# पक्कमाणुयोगद्दारं

जयउ भुवणेक्कतिलओ तिहुवणकलिकलुसधुवणवावारो ।
संतियरो संतिजिणो पक्कमअणुयोगकत्तारो ॥ १ ॥

पक्कमे त्ति अणुयोगद्दारस्स थोवत्थपरूवणे ✱ कीरमाणे अपयदत्थणिराकरण-दुवारेण पयदत्थपरूवणट्ठं णिक्खेवो कीरदे । तं जहा– णामपक्कमो, ठवणपक्कमो, दव्वपक्कमो, खेत्तपक्कमो, कालपक्कमो, भावपक्कमो चेदि छव्विहो पक्कमो । णाम-ठवणं गदं । दव्वपक्कमो दुविहो आगम-णोआगमदव्वपक्कमभेएण । तत्थ आगमदव्वपक्कमो पक्कमाणुओगद्दारजाणगो अणुवजुत्तो । णोआगमदव्वपक्कमो तिविहो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेदेण । जाणुगसरीर-भवियं गदं । तव्वदिरित्तपक्कमो दुविहो– कम्मपक्कमो णोकम्मपक्कमो चेदि । तत्थ कम्मपक्कमो अट्ठविहो । णोकम्मपक्कमो तिविहो– सचित्त-अचित्त-मिस्सभेएण । अस्साणं हत्थीणं पक्कमो सचित्तपक्कमो णाम । हिरण्ण-सुवण्णादीणं पक्कमो अचित्तपक्कमो णाम । साभरणाणं हत्थीणं अस्साणं वा पक्कमो मिस्सपक्कमो णाम । खेत्तपक्कमो तिविहो– उड्ढलोगपक्कमो अधोलोगपक्कमो तिरियलोगपक्कमो चेदि । एत्थ आधेये आधारोवयारेण तत्थट्ठियजीवाणं उड्ढाधोतिरियलोगो त्ति सण्णा, अण्णहा तिण्णं लोगाणं

---

लोकके एक मात्र तिलक स्वरूप, तीन लोकके शत्रुभूत पाप-मैलके धोनेमें व्यापृत, शान्तिके करनेवाले और प्रक्रम अनुयोगके कर्ता ऐसे शान्तिनाथ जिनेन्द्र जयवन्त होवें ॥ १ ॥

प्रक्रम इस अनुयोगद्वारके स्तोक अर्थोंकी प्ररूपणा करते समय अप्रकृत अर्थके निराकरण द्वारा प्रकृत अर्थकी प्ररूपणा करनेके लिये निक्षेप किया जाता है । वह इस प्रकार है– नामप्रक्रम, स्थापनाप्रक्रम, द्रव्यप्रक्रम, क्षेत्रप्रक्रम, कालप्रक्रम और भावप्रक्रम; इस प्रकार प्रक्रम छह प्रकारका है । इनमें नामप्रक्रम और स्थापनाप्रक्रम अवगत हैं । द्रव्यप्रक्रम आगमद्रव्यप्रक्रम और नोआगम-द्रव्यप्रक्रमके भेदसे दो प्रकारका है । उनमें प्रक्रम अनुयोगद्वारका ज्ञायक उपयोग रहित जीव आगमद्रव्यप्रक्रम है । नोआगमद्रव्यप्रक्रम ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । इनमेंसे ज्ञायकशरीर और भावी नोआगमद्रव्यप्रक्रम अवगत हैं । तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यप्रक्रम कर्मप्रक्रम और नोकर्मप्रक्रमके भेदसे दो प्रकारका है । उनमें कर्मप्रक्रम आठ प्रकारका है । नोकर्मप्रक्रम सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । अश्वों और हाथियोंका प्रक्रम सचित्तप्रक्रम, हिरण्य और सुवर्ण आदिकोंका प्रक्रम अचित्तप्रक्रम, तथा आभरण सहित हाथियों व अश्वोंका प्रक्रम मिश्रप्रक्रम कहलाता है ।

क्षेत्रप्रक्रम ऊर्ध्वलोकप्रक्रम, अधोलोकप्रक्रम और तिर्यग्लोकप्रक्रमके भेदसे तीन प्रकारका है । यहां आधेयमें आधारका उपचार करनेसे उन लोकोंमें स्थित जीवोंकी ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और

---

✱ ताप्रतौ 'थोवत्त (त्थ) यपरूवणे' इति पाठः ।

**थावराणं पक्कमाणुववत्तीदो । समयावलिया-खण-लव-मुहुत्तादी कालपक्कमो ❂ । भावपक्कमो दुविहो– आगमदो णोआगमदो ✿ च। तत्थ आगमदो पक्कमाणुओगद्दार-जाणओ उवजुत्तो । णोआगमदो भावपक्कमो ओदइयादिपंचभावा । एत्थ कम्मपक्कमे पयदं । प्रक्रामतीति प्रक्रमः कार्मणपुद्गलप्रचयः । आदाणिओ एत्थ भणदि– जहा कुंभारो एयादो मट्टियपिंडादो अणेयाणि घडादीणि उप्पादेदि तहा इत्थी पुरिसो णवुंसओ थावरो तसो वा जो वा सो वा एयविहं कम्मं बंधिदूण अट्ठविहं करेदि, अकम्मादो कम्मस्स उप्पत्तिविरोहादो ? एत्तो णिग्गहो कीरदे– जदि अकम्मादो ✺ कम्मुप्पत्ती ण होदि तो अकम्मादो ✺ तुब्भेहि संकप्पिदएगकम्मुप्पत्ती वि ण होदि, कम्मत्तं पडि विसेसाभावादो । अह कम्मइयवग्गणादो जमेगमुप्पण्णं तं जइ कम्मं ण होदि तो तत्तो ण अट्ठकम्माणमुप्पत्ती, अकम्मादो ✺ कम्मुप्पत्तिविरोहादो । ण च एयंतेण कारणाणुसारिणा कज्जेण होदव्वं, मट्टियपिंडादो मट्टियपिंडं मोत्तूण घट-घटी-सरावालिंजरुट्टियादीणमणुप्पत्तिप्पसंगादो । सुवण्णादो सुवण्णस्स घटस्सेव उप्पत्तिदंसणादो कारणाणुसारि चेव कज्जं ति ण वोत्तुं जुत्तं कढिणादो ♣ सुवण्णादो जलणादिसंजोगेण सुवण्णजलुप्पत्तिदंसणादो । किं च– कारणं व ण कज्जमुप्पज्जदि,**

---

तिर्यग्लोक संज्ञा है, क्योंकि, इसके विना स्थिरशील तीन लोकोंका प्रक्रम बन नहीं सकता। समय, आवली, क्षण, लव और मुहूर्त आदिकको कालप्रक्रम कहा जाता है। भावप्रक्रम दो प्रकारका है--- आगमभावप्रक्रम और नोआगमभावप्रक्रम। उनमें प्रक्रम अनुयोगद्वारका ज्ञायक उपयोग युक्त जीव आगमभावप्रक्रम है। औदयिक आदिक पांच भावोंको नोआगमभावप्रक्रम कहा जाता है। यहां कर्मप्रक्रम प्रकृत है। 'प्रक्रामतीति प्रक्रमः' इस निरुक्तिके अनुसार कार्मण पुद्गलप्रचयको प्रक्रम कहा गया है।

शंका--- यहां शंकाकार कहता है कि जिस प्रकार कुम्हार मिट्टीके एक पिण्डसे अनेक घटादिकोंको उत्पन्न करता है उसी प्रकार स्त्री, पुरुष, नपुंसक, स्थावर, त्रस अथवा जो कोई भी जीव एक प्रकारके कर्मको बांधकर उसे आठ भेद रूप करता है; क्योंकि, अकर्मसे कर्मकी उत्पत्तिका विरोध है ?

समाधान--- इस शंकाका निग्रह करते हैं। यदि अकर्मसे कर्मकी उत्पत्ति नहीं होती है तो फिर तुम्हारे द्वारा संकलिपत एक कर्मकी उत्पत्ति भी अकर्मसे नहीं हो सकती, क्योंकि, कर्मत्वके प्रति कोई विशेषता नहीं है। यदि कहा जाय कि कार्मण वर्गणासे जो एक उत्पन्न हुआ है वह यदि कर्म नहीं है तो फिर उससे आठ कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती; क्योंकि, अकर्मसे कर्मकी उत्पत्तिका विरोध है। दूसरे कारणानुसारी ही कार्य होना चाहिये, यह एकान्त नियम भी नहीं है; क्योंकि, मिट्टीके पिण्डसे मिट्टीके पिण्डको छोडकर घट, घटी, शराब अलिंजर और उष्ट्रिका आदिक पर्याय विशेषोंकी उत्पत्ति न हो सकनेका प्रसंग अनिवार्य होगा। यदि कहो कि सुवर्णसे सुवर्णके घटकी ही उत्पत्ति देखी जानेसे कार्य कारणानुसारी ही होता है, सो ऐसा कहना भी योग्य नहीं है; क्योंकि, कठोर सुवर्णसे अग्नि आदिका संयोग होनेपर सुवर्णजलकी उत्पत्ति देखी

---

❂ ताप्रतौ 'मुहुत्तादिकालपक्कमो', इति पाठः। ✿ काप्रतौ 'आगमणोआगमदो' इति पाठः। ✺ काप्रतौ 'अक्कमादो' इति पाठः। ♣ का-ता-मप्रतिषु 'कडिणादो', इति पाठः।

**सव्वप्पणा कारणसरूवमावण्णस्स उप्पत्तिविरोहादो। जदि एयंतेण ण कारणाणुसारि चेव कज्जमुप्पज्जदि तो मुत्तादो पोग्गलदव्वादो अमुत्तस्स गयणुप्पत्ती होज्ज, णिच्चेयणादो पोग्गलदव्वादो सचेयणस्स जीवदव्वस्स वा उप्पत्ती पावेज्ज। ण च एवं, तहाणुवलंभादो। तम्हा ✪ कारणाणुसारिणा कज्जेण होदव्वमिदि। एत्थ परिहारो वुच्चदे-- होदु णाम केण वि सरूवेण कज्जस्स कारणाणुसारित्तं, ण सव्वप्पणा; उप्पाद-वय-ट्ठिदिलक्खणाणं जीव-पोग्गल-धम्माधम्म-कालागासदव्वाणं सगवइसेसिय-गुणाविणाभाविसयलगुणाणमपरिच्चाएण पज्जायंतरगमणदंसणादो। ण च कम्मइय-वग्गणादो कम्माणि एयंतेण पुधभूदाणि, णिच्चेयणत्तेण मुत्तभावेण पोग्गलत्तेण च ताणमेयत्तुवलंभादो। ण च एयंतेण अपुधभूदाणि चेव, णाणावरणादिपयडिभेदेण ट्ठिदिभेदेण अणुभागभेदेण च जीवपदेसेहि अण्णोण्णाणुगयत्तेण च भेदुवलंभादो। तदो सिया कज्जं कारणाणुसारि सिया णाणुसारि त्ति सिद्धं।**

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ❀ ॥ १ ॥

---

जाती है। इसके अतिरिक्त, जिस प्रकार कारण उत्पन्न नहीं होता है उसी प्रकार कार्य भी उत्पन्न नहीं होगा, क्योंकि, कार्य सर्वात्मना कारण रूप ही रहेगा इसलिए उसकी उत्पत्तिका विरोध है।

शंका-- यदि सर्वथा कारणका अनुसरण करनेवाला ही कार्य नहीं होता है तो फिर मूर्त पुद्गल द्रव्यसे अमूर्त आकाशकी उत्पत्ति हो जानी चाहिये, इसी प्रकार अचेतन पुद्गल द्रव्यसे सचेतन जीव द्रव्यकी भी उत्पत्ति पायी जानी चाहिये। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता। इसीलिये कार्य कारणानुसारी ही होना चाहिये ?

समाधान-- यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं। किसी विशेष स्वरूपसे कार्य कारणानुसारी भले ही हो, परन्तु वह सर्वात्म स्वरूपसे वैसा सम्भव नहीं है; क्योंकि, उत्पाद व्यय व ध्रौव्य लक्षणवाले जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश द्रव्य अपने विशेष गुणोंके अविनाभावी समस्त गुणोंका परित्याग न करके अन्य पर्यायको प्राप्त होते हुए देखे जाते हैं। दूसरे, कर्म कार्मण वर्गणासे सर्वथा भिन्न भी नहीं हैं, क्योंकि, उनमें अचेतनत्व, मूर्तत्व और पौद्गलिकत्व स्वरूपसे कार्मण वर्गणाके साथ समानता पायी जाती है। इसी प्रकार वे उससे सर्वथा अभिन्न भी नहीं हैं, क्योंकि, ज्ञानावरणादि रूप प्रकृतिभेद, स्थितिभेद व अनुभागभेदसे तथा जीवप्रदेशोंके साथ परस्पर अनुगत स्वरूपसे उनमें कार्मण वर्गणासे भेद पाया जाता है। इसलिये कार्य कथंचित् कारणानुसारी है और कथंचित् वह तदनुसारी नहीं भी है, यह सिद्ध है।

शंका-- चूंकि असत् कार्य किया नहीं जा सकता है, उपादानोंके साथ कार्यका सम्बन्ध रहता है, किसी एक कारणसे सभी कार्योंकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, समर्थ कारणके द्वारा शक्य कार्य ही किया जाता है, तथा कार्य कारणस्वरूप ही है-- उससे भिन्न सम्भव नहीं है; अतएव इन हेतुओंके द्वारा कारणव्यापारसे पूर्व भी कार्य सत् ही है, यह सिद्ध है ॥ १ ॥

---

✪ काप्रतौ 'तं जहा' इति पाठः। ❀ सांख्यकारिका ९.

**इदि के वि भणंति। एदं पि ण जुज्जदे। कुदो ? एयंतेण संते कत्तारवावारस्स विहलत्तप्पसंगादो, उवायाणग्गहणाणुववत्तीदो, सव्वहा संतस्स संभवविरोहादो, सव्वहा**

विशेषार्थ-- सांख्यमतमें प्रधानकी सिद्धिमें उपयोगी होनेसे सत्कार्यवादको स्वीकार किया गया है। कार्यको सत् सिद्ध करनेके लिये उपर्युक्त कारिकामें निम्न हेतु दिये गये हैं-- ( १ ) यदि कारणव्यापारके पूर्वमें कार्यको सत् ही स्वीकार किया जाय तो उसका उत्पन्न होना शक्य नहीं है, जैसे खरविषाण। अत एव कारणव्यापारके पूर्वमें भी कार्यको सत् ही स्वीकार करना चाहिये। कारणके द्वारा केवल उसकी अभिव्यक्ति की जाती है जो उचित ही है। जैसे तिलोंमें तैल जब पहिलेसे ही सत् है तभी वह कोल्हू आदिके द्वारा निकाला जा सकता है, वालुकामेंसे तैलका निकाला जाना किसी प्रकार भी शक्य नहीं है। ( २ ) दूसरा हेतु 'उपादानग्रहण' दिया गया है-- उपादानग्रहणका अर्थ है कारणोंसे कार्यका सम्बन्ध। अर्थात् कारण कार्यसे सम्बद्ध हो करके ही उसका उत्पादक हो सकता है, न कि असम्बद्ध रह कर। और वह सम्बद्ध चूंकि असत् कार्यके साथ सम्भव नहीं है, अतएव कारणव्यापारसे पूर्वमें भी कार्यको सत् ही स्वीकार करना चाहिये। ( ३ ) यदि कहा जाय कि कारण असम्बद्ध ही कार्यको उत्पन्न कर सकते हैं, अत: इसके लिये कार्यको सत् मानना आवश्यक नहीं है; सो यह कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि, वैसा माननेपर जिस प्रकार मिट्टीके द्वारा अपनेसे असम्बद्ध घट कार्य किया जाता है उसी प्रकार असम्बद्धत्वकी समानता होनेसे घटके समान पट आदिक कार्य भी उसके द्वारा उत्पन्न किये जा सकते हैं। इस प्रकार एक ही किसी कारणसे सब कार्योंके उत्पन्न होनेका प्रसंग अनिवार्य होगा। परन्तु ऐसा चूंकि सम्भव नहीं है, अतएव यह स्वीकार करना चाहिये कि सम्बद्ध कारण सम्बद्ध कार्यको ही उत्पन्न करता है, न कि असम्बद्धको। इस प्रकार यह तीसरा हेतु देकर सत्कार्य सिद्ध किया गया है। ( ४ ) यहां शंका की जा सकती है कि असम्बद्ध रहकर भी वही कार्य उत्पन्न किया जा सकता है जिसके उत्पन्न करनेमें कारण समर्थ है। इसीलिये सर्वसम्भवका प्रसंग देना उचित नहीं है। इसके उत्तरमें 'शक्तस्य शक्यकरणात्' यह चतुर्थ हेतु दिया गया है। उसका अभिप्राय है कि शक्त कारण शक्य कार्यको ही करता है। यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि कारणमें रहनेवाली वह कार्योत्पादनरूप शक्ति क्या समस्त कार्यविषयक है या शक्य कार्यविषयक ही है ? यदि उक्त शक्ति समस्त कार्यविषयक स्वीकार की जाती है तो सबसे सभीके उत्पन्न होनेका जो प्रसंग दिया गया है वह तदवस्थ ही रहेगा। इसलिये यदि उक्त शक्तिको शक्य कार्यविषयक ही स्वीकार किया जाय तो फिर स्वयमेव सत् कार्य सिद्ध हो जाता है, क्योंकि, अविद्यमान शक्य कार्यमें तद्विषयक शक्तिकी सम्भावना ही नहीं रहती। अतएव कार्य सत् ही है। ( ५ ) सत् कार्यको सिद्ध करनेके लिये अन्तिम हेतु 'कारणभाव' दिया गया है। उसका अभिप्राय यह है कि कार्य चूंकि कारणात्मक है, अतएव जब कारण सत् है तो उससे अभिन्न कार्य कैसे असत् हो सकता है ? नहीं हो सकता। अत: कार्य कारणव्यापारके पूर्व भी सत् ही रहता है। यह सांख्योंका अभिमत है। आगे वीरसेन स्वामी स्वयं इस अभिप्रायका निरास करनेवाले हैं।

समाधान-- इस प्रकार किन्हीं कपिल आदिका कहना है जो योग्य नहीं है। कारण कि कार्यको सर्वथा सत् माननेपर कर्ताके व्यापारके निष्फल होनेका प्रसंग आता है। इसी प्रकार सर्वथा कार्यके सत् होनेपर उपादानका ग्रहण भी नहीं बनता, सर्वथा सत् कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है,

**संते कज्ज-कारणभावाणुववत्तीदो। किं च-- विप्पडिसेहादो ण संतस्स उप्पत्ती। जदि अत्थि, कधं तस्सुप्पत्ती? अह उप्पज्जइ, कधं तस्स अत्थित्तमिदि।**

**किं च- णिच्चपक्खे ण कारणं कज्जं वा अत्थि, णिव्वियप्पभावेण पागभाव-पद्धंसाभावविरहिए तदणुववत्तीदो। आविब्भावो उप्पादो, तिरोभावो विणासो त्ति ण वोत्तुं जुत्तं, णिच्चस्स अत्थस्स दोण्णं मज्झे एगम्हि चेव भावे अवट्ठियस्स अणाहेआदिसयत्तेण अवत्थंतरसंकंतिवज्जियस्स दुब्भावविरोहादो। वुत्तं च--**

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलं✪॥ २॥

---

कार्यके सर्वथा सत् होनेपर कार्य-कारणभाव ही घटित नहीं होता। इसके अतिरिक्त असंगत होनेसे सत् कार्यकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है; क्योंकि, यदि कार्य कारणव्यापारके पूर्वमें भी विद्यमान है तो फिर उसकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है? और यदि वह कारणव्यापारसे उत्पन्न होता है तो फिर उसका पूर्वमें विद्यमान रहना कैसे संगत कहा जावेगा?

और भी- नित्य पक्षमें कारण और कार्यका अस्तित्व ही सम्भव नहीं है, क्योंकि, उस अवस्थामें निर्विकल्प होनेके कारण प्रागभाव और प्रध्वंसाभावसे रहित अर्थमें कार्य-कारणभाव बन नहीं सकता। यदि कहा जाय कि आविर्भावका नाम उत्पाद और तिरोभावका नाम विनाश है, तो यह भी कहना योग्य नहीं है; क्योंकि, इन दोनोंमेंसे किसी एक ही अवस्थामें रहनेवाले नित्य पदार्थका अनाधेयातिशय ( विशेषता रहित ) होनेसे चूंकि अवस्थान्तरमें संक्रमण सम्भव नहीं है, अतएव उसमें आविर्भाव एवं तिरोभाव रूप दो अवस्थाओंके रहनेका विरोध है, अर्थात् कूटस्थ नित्य होनेसे यदि वह तिरोभूत है तो तिरोभूत ही सदा रहेगा, और यदि आविर्भूत है तो सदा आविर्भूत ही रहेगा। कहा भी है--

नित्य एकान्त पक्षमें भी पूर्व अवस्था ( मृत्पिण्डादि ) के परित्यागरूप और उत्तर अवस्था ( घटादि ) के ग्रहण रूप विक्रिया घटित नहीं होती, अतः कार्योत्पत्तिके पूर्वमें ही कर्त्ता आदि कारकोंका अभाव रहेगा। और जब कारक ही न रहेंगे तब भला फिर प्रमाण ( प्रमृति क्रियाका अतिशय साधक ) और उसके फल ( अज्ञाननिवृत्ति ) की सम्भावना कैसे की जा सकती है? अर्थात् उनका भी अभाव रहेगा॥ २॥

विशेषार्थ--- सांख्य मतमें चेतन पुरुषको कूटस्थ नित्य स्वीकार किया गया है। इस मतका निराकरण करनेके लिये उक्त कारिकाका अवतार हुआ है। उसका अभिप्राय यह है कि पुरुषको सर्वथा नित्य माना जाता है तो वह विकार रहित होनेसे चेतना रूप क्रियाका कर्त्ता भी नहीं हो सकता, क्योंकि, उस अवस्थामें कारक ( कुम्भकारादि ) अथवा ज्ञापक ( प्रमाता ) हेतुओंका व्यापार असम्भव है। अथवा यदि कारक व ज्ञापक हेतुओंका व्यापार स्वीकार किया जाता है तो फिर पूर्व स्वभाव ( अकारक अथवा अप्रमाता ) का परित्याग करके उत्तर स्वभाव ( उत्पत्ति अथवा क्रियाका कर्तृत्व ) को ग्रहण करनेके कारण उसकी कूटस्थताका बिघात होता है। अतएव कूटस्थ नित्यताका पक्ष बनता नहीं है।

---

✪ आ मी॰ ३७.

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति ।
परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी✪ ।। ३ ।।
पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं✱ कुतः ।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः✿ ।। ४ ।।

**सदकरणात्, उपादानग्रहणात्, सर्वसम्भवाभावात्, शक्तस्य शक्यकरणात्, कारणभावाच्च असंतं चेव कज्जमुप्पज्जदि त्ति के वि भणंति। तण्ण जुज्जदे, विसेससरूवेणेव सामण्णसरूवेण वि असंते बुद्धिविसयमइक्कंते वयणगोथरमुल्लंघिय ट्ठिदकारणकलाववावारविरोहादो। अविरोहे वा, मट्टियपिंडादो घडो व्व गद्दहसिंगं पि उप्पज्जेज्ज, असंतं पडि**

यदि कार्य सर्वथा सत् है तो वह पुरुषके समान उत्पन्न नहीं हो सकता । और परिणामकी कल्पना नित्यत्वरूप एकान्त पक्षकी विघातक है ।। ३ ।।

विशेषार्थ–– अभिप्राय यह है कि यदि कार्यको सर्वथा सत् ही स्वीकार किया जाता है तो जैसे सांख्य मतमें पुरुषकी उत्पत्ति नहीं मानी गई है वैसे ही पुरुषके समान सर्वथा सत् होनेसे प्रकृतिसे महान् व अहंकारादिकी भी अनुत्पत्तिका अनिवार्य प्रसंग आता है, जो उन्हें अभीष्ट नहीं है । इस प्रसंगको टालनेके लिये यदि कहा जाय कि यथार्थमें न कोई कार्य उत्पन्न होता है और न नष्ट ही होता है । किन्तु जिस प्रकार कछवा अपने विद्यमान अंगोंको कभी बाहिर निकालता है और कभी भीतर छुपा लेता है, इसी प्रकार पूर्वमें विद्यमान महान् व अहंकारादिका प्रधानसे आविर्भाव मात्र होता है । इस प्रकारके आविर्भाव व तिरोभावरूप परिणामको छोडकर कार्य-कारणभाव वास्तवमें है ही नहीं । सो इस कथनको असंगत बतलाते हुए उत्तरमें यहां कहा गया है कि पूर्वस्वभाव ( तिरोभूत अवस्था ) के नाश और उत्तरस्वभाव ( आविर्भूत अवस्था ) के उत्पन्न होनेका नाम ही तो परिणाम है । फिर भला ऐसे परिणामकी कल्पना करनेपर नित्यत्वरूप एकान्त पक्षमें कैसे बाधा न उपस्थित होगी ? अवश्य होगी ।

इसके अतिरिक्त सर्वथा नित्यत्वकी प्रतिज्ञामें मन, वचन व कायकी शुभ प्रवृत्तिरूप पुण्य क्रिया तथा उनकी अशुभ प्रवृत्तिरूप पाप क्रिया भी नहीं बन सकती । अत एव पुण्य व पापका अभाव होनेपर जन्मान्तरप्राप्तिरूप प्रेत्यभाव तथा सुख व दुःखके अनुभवनरूप पुण्य एवं पापका फल भी कहांसे होगा ? नहीं हो सकेगा । इसलिये हे भगवन् ! जिन एकान्तवादियोंके आप नेता नहीं हैं उनके मतमें बन्ध व मोक्षकी व्यवस्था भी नहीं बन सकती ।। ४ ।।

अब सत् कार्यके किये न जा सकनेसे उपादानोंका ग्रहण होनेसे, सबसे सबकी उत्पत्तिका अभाव होनेसे, शक्त कारण द्वारा शक्य कार्यके ही किये जानेसे तथा कारणभाव होनेसे असत् ही कार्य उत्पन्न होता है; ऐसा कणाद ( वैशेषिकदर्शनके कर्ता ) और गौतम ( न्यायदर्शनके कर्ता ) आदि कितने ही ऋषि कहते हैं वह भी योग्य नहीं है, क्योंकि, कार्य जैसे विशेष ( घटादि आकार ) स्वरूपसे असत् है वैसे ही यदि उसे सामान्य ( मृत्तिका आदि ) स्वरूपसे भी असत् स्वीकार किया जाय तो ऐसा कार्य न तो बुद्धिका ही विषय हो सकता है और न वचनका भी । अत एव बुद्धि व वचनके अविषयभूत ऐसे कार्यके लिये स्थित कारणकलापके व्यापारका विरोध आता है । और यदि विरोध न माना जाय तो फिर जैसे मिट्टीके पिण्डसे घट उत्पन्न होता है वैसे ही उससे गधेका सींग भी उत्पन्न हो जाना चाहिये, क्योंकि, असत्त्वकी

✪ आ मी ३९. ✱ काप्रतौ 'प्रत्यभावफलं' इति पाठः । ✿ आ मी ४०.

**विसेसाभावादो। किं च –जदि पिंडे असंतो घडो समुप्पज्जइ तो वालुवादो वि तदुप्पत्ती होदु, असंतं पडि विसेसाभावादो। किं च–इदं चेव एदस्स कारणं, ण अण्णमिदि एदं पि ण जुज्जदे; णियामयाभावादो। भावे वा, कारणे कज्जस्स अत्थित्तं मोत्तूण कोवरो णियामयो होज्ज ? ण सहावो णियामओ, कज्जुप्पत्तीए पुव्वं कज्जस्सहावस्स✱ अभावादो। ण चासंतो♣ असंतस्स णियामयो होदि, अइप्पसंगादो। किं च–पिंडे घडो व्व तिहुवणमुप्पज्जउ, असंतं पडि भेदाभावादो। ण च एवं, परिमियकज्जुप्पत्तिदंसणादो। किं च–समत्थो वि कुंभारो मट्टियपिंडे घडं व पडं किण्ण उप्पादेदि, विसेसाभावादो ? विसेसभावे वा सगसत्तं मोत्तूण कोवरो विसेसो होज्ज ? वुत्तं च––**

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत् ।
मोपादाननियामो भून्माश्वासः कार्यजन्मनि✿ ॥ ५ ॥

अपेक्षा दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है। दूसरे, यदि मृत्पिण्डमें अविद्यमान घट उससे उत्पन्न होता है तो वह मृत्पिण्डके समान वालुसे भी क्यों न उत्पन्न हो जावे ? अवश्य ही उत्पन्न हो जाना चाहिये, क्योंकि, असत्त्वकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है। ( अर्थात् जैसे वह मृत्पिण्डमें अविद्यमान है वैसे ही वह वालुमें भी अविद्यमान है। फिर क्या कारण है कि वह मृत्पिण्डसे तो उत्पन्न होता है और वालुसे नहीं उत्पन्न होता ? अत एव मानना चाहिये कि घट मृत्पिण्डमें व्यक्तिरूपसे अविद्यमान होकर भी शक्तिरूपसे विद्यमान है, किन्तु वालुमें वह शक्तिरूपसे भी विद्यमान नहीं; अतएव वह जैसे मृत्पिण्डसे उत्पन्न होता है वैसे वालुसे उत्पन्न नहीं हो सकता। )

और भी–कार्यको सर्वथा असत् माननेपर यही इसका कारण है, अन्य नहीं है; यह भी घटित नहीं होता, क्योंकि, इसका कोई नियामक नहीं है। और यदि कोई नियामक है भी, तो वह कारणमें कार्यके अस्तित्वको छोड़कर दूसरा भला कौनसा नियामक हो सकता है ? यदि कहो कि स्वभाव नियामक है तो यह भी सम्भव नहीं है क्योंकि, कार्योत्पत्तिके पूर्वमें कार्यके स्वभावका अभाव है। और एक असत् कुछ दूसरे असत्का नियामक हो नहीं सकता, क्योंकि, वैसा होनेपर अतिप्रसंग आता है। इसके अतिरिक्त–मृत्पिण्डमें जैसे घट उत्पन्न होता है वैसे ही उससे तीनों लोक भी उपत्न्न हो जाने चाहिये; क्योंकि, असत्त्वकी अपेक्षा इनमें कोई भेद भी नहीं है। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि, परमित कार्यकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसके सिवाय समर्थ भी कुम्हार मृत्पिण्डमें जैसे घटको उत्पन्न करता है वैसे पटको क्यों नहीं उत्पन्न करता, क्योंकि, किसी भी विशेषताका यहां अभाव है। अथवा यदि कोई विशेषता है, तो वह अपने अस्तित्वको छोड़कर और दूसरी क्या हो सकती है ? कहा भी है––

यदि कार्य सर्वथा (पर्यायके समान द्रव्यसे भी असत् है तो वह आकाशकुसुमके समान उत्पन्न ही नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त वैसी अवस्थामें घटका उपादान मिट्टी है, तन्तु नहीं है, इस प्रकारका उपादाननियम भी नहीं बन सकेगा। इसीलिये अमुक कार्य अमुक कारणसे उत्पन्न होता है, अमुकसे नहीं; इस प्रकारका कोई भी आश्वासन कार्यकी उत्पत्तिमें नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

✱ ताप्रतौ 'कज्जस्स सहावस्स' इति पाठः। ♣ मप्रतिपाठोऽयम्। का-ताप्रत्योः 'णवासंतो' इति पाठः।
✿ आ. मी. ४२.

**किं च– ण णिच्चादो कारणकलावादो असंतस्स कज्जमुप्पज्जइ, णिच्चस्स अणाहेयादिसयस्स पमाणगोयरमइक्कंतस्स अणहिलप्पस्स असंतस्स कारणत्तविरोहादो। ण कमेण कुणदि, णिच्चम्मि कमाभावादो। भावे वा, अणिच्चं होज्ज; अवत्थादो अवत्थंतरं गयस्स✪ णिच्चत्ताविरोहादो। ण च अक्कमेण कुणदि, एगसमए समुप्पाइदसयलकज्जस्स बिदियसमए असंतप्पसंगादो। ण च अकज्जं कारणमत्थित्तमल्लियइ, पमाणविसयमइक्कंतस्स अत्थित्ताविरोहादो।**

**ण च अणिच्चादो कारणादो असंतं कज्जमुप्पज्जदि, अट्ठियस्स कारणत्ताविरोहादो। ण ताव उप्पज्जमाणमुप्पादेदि, एगसमए चेव सव्वकज्जाणमुप्पत्तिप्पसंगादो। ण च एवं, बिदियसमए सव्वकज्जस्स अणुवलद्धिप्पसंगादो। ण च उप्पण्णमुप्पादेदि, अणवट्ठियस्स दुसमयअवट्ठाणविरोहादो। ण च णट्ठं कज्जमुप्पादेदि, अभावस्स सयलसत्तिविरहियस्स**

---

और भी– नित्य कारणकलापसे तो असत् कार्यकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि, सर्वथा नित्य वस्तु अनाधेयातिशय होनेसे न प्रमाणकी विषय हो सकती है और न वचनकी भी विषय हो सकती है। इस प्रकार असत् होनेसे ( गधेके सींगके समान ) उससे कारणताका विरोध है। ( इतनेपर भी यदि उसे कारण स्वीकार किया जाता है तो यह भी प्रश्न उपस्थित होता है कि विवक्षित कारण क्या क्रमसे कार्यको करता है या अक्रमसे ? ) क्रमसे तो वह कार्यको कर नहीं सकता, क्योंकि, नित्यमें क्रमकी सम्भावना ही नहीं है। अथवा यदि उसमें क्रमकी सम्भावना है तो फिर वह अनित्यताको प्राप्त होना चाहिये, क्योंकि, एक अवस्थासे दूसरी अवस्थाको प्राप्त होनेपर नित्यताका विरोध है। अक्रमसे वह कार्यको करता है, यह द्वितीय पक्ष भी योग्य नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर एक समयमें समस्त कार्यको उत्पन्न करके द्वितीय समयमें उसके असत्त्वका प्रसंग आता है। इस प्रकारसे कार्यव्यापारसे रहित कारण अस्तित्वको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, प्रमाण ( अनुमानादि ) का अविषय होनेसे उसके अस्तित्वका विरोध है।

अनित्य कारणसे असत् कार्य उत्पन्न होता है, यह बौद्धाभिमत भी ठीक नहीं है; क्योंकि, स्थिति रहित वस्तुके कारणताका विरोध है ( यदि स्थितिसे रहित अर्थ भी कारण हो सकता है तो वह क्या उत्पन्न होता हुआ कार्यको उत्पन्न करता है, उत्पन्न होकर कार्यको उत्पन्न करता है, नष्ट होकर कार्यको उत्पन्न करता है, अथवा विनष्ट होता हुआ कार्यको उत्पन्न करता है ? ) उत्पन्न होता हुआ तो वह कार्यको उत्पन्न कर नहीं सकता, क्योंकि, इस प्रकारसे एक समयमें ही समस्त कार्योंके उत्पन्न होनेका प्रसंग आता है। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि, वैसा होनेपर द्वितीय समयमें समस्त कार्योंकी अनुपलब्धिका प्रसंग प्राप्त होता है। उत्पन्न होकर वह कार्यको उत्पन्न करता है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, अवस्थानसे रहित उसका दो समयोंमें रहनेका विरोध है। नष्ट हो करके वह कार्यको उत्पन्न करता है, यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि, नष्ट होनेपर अभाव स्वरूपको प्राप्त हुए उसके समस्त शक्तियोंसे रहित होनेके कारण कार्यको उत्पन्न करनेका विरोध

---

✪ काप्रतौ 'सयस्स' इति पाठः।

**कज्जुप्पायणत्तविरोहादो। अविरोहे वा, ससिंसिगादो वि ससी समुप्पज्जेज्ज, अभावं पडि विसेसाभावादो। ण च विणस्संतमुप्पादेदि, विणट्ठाविणट्ठभावे मोत्तूण विणस्संत-भावस्स तइज्जस्स अणुवलंभादो। तदो णासंतं पि कज्जमुप्पज्जदि। णोभयसरूवं कज्जमुप्पज्जइ, विरोहादो उभयपक्खदोसप्पसंगादो वा। णाणुभयपक्खो वि, णीरूवस्स उप्पत्तिविरोहादो। ण च कज्जाभावो, उवलब्भमाणस्स अभावविरोहादो। तदो सिया संतं, सिया असंतं, सिया अवत्तव्वं, सिया संतं च असंतं च, सिया संतं च अवत्तव्वं च, सिया असंतं च अवत्तव्वं च, सिया संतं च असंतं च अवत्तव्वं च कज्जमुप्पज्जदि त्ति णिच्छओ कायव्वो; अण्णहा पुव्वुत्तदोसप्पसंगादो।**

**एदेसिं भंगाणमत्थो वुच्चदे। तं जहा– कज्जं सिया संतमुप्पज्जदि, पोग्गलभावेण मट्टियादिवंजणपज्जाएहि य संतस्स दव्वस्स घडपज्जाएण उप्पत्तिदंसणादो। सिया असंतमुप्पज्जइ, पिंडागारेण णट्ठस्स पोग्गलदव्वस्स घडभावेण उप्पत्तिदंसणादो। सिया अवत्तव्वं कज्जमुप्पज्जइ, पोग्गलदव्वस्स अत्थपज्जाएहि वयणविसयमइक्कंतस्स घडभावेणुप्पत्तिदंसणादो, विहि–पडिसेहधम्माणं सगसरूवापरिच्चाएण अण्णोण्णाणुगयत्तादो जच्चंतर–**

---

है। और यदि इस विरोधको नहीं माना जाता है, तो फिर खरगोशके सींगसे भी चन्द्रमा उत्पन्न हो जाना चाहिये, क्योंकि, अभावकी अपेक्षा उनमें कोई विशेषता नहीं है। विनष्ट होता हुआ वह कार्यको उत्पन्न करता है, यह पक्ष भी असंगत है; क्योंकि, विनष्ट और अविनष्ट पदार्थोंको छोड़कर तीसरा कोई विनश्यमान पदार्थ पाया नहीं जाता। इस कारण सत् कार्यके समान असत् कार्य भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। यदि कहा जाय कि उभय ( सत्–असत् ) स्वरूप कार्य उत्पन्न होता है, सो यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि, उसमें विरोध आता है। अथवा, उभय पक्षमें दिये गये दोषोंका प्रसंग अनिवार्य होगा। अनुभव ( न सत् न असत् ) पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि, वैसी अवस्थामें निःस्वरूप होनेसे उसकी उत्पत्तिका विरोध है। यदि कार्यका ही अभाव स्वीकार किया जाय तो यह भी अनुचित होगा, क्योंकि, जो प्रत्यक्षादिसे उपलभ्यमान है उसका अभाव माननेमें विरोध आता है। इस कारण कथंचित् सत्, कथंचित् असत् कथंचित् अवक्तव्य, कथंचित् सत् व असत्, कथंचित् सत् व अवक्तव्य, कथंचित् असत् व अवक्तव्य, तथा कथंचित् सत् व असत् और अवक्तव्य कार्य उत्पन्न होता है ऐसा निश्चय करना चाहिये; क्योंकि, इसके बिना एकान्त पक्षोंमें दिये गये पूर्वोक्त दोषोंका प्रसंग अनिवार्य है।

इन भंगोंका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है–कार्य कथंचित् सत् उत्पन्न होता है, क्योंकि, पुद्गल स्वरूपसे और मृत्तिका आदि व्यञ्जन पर्यायरूपसे भी सत् द्रव्यकी घट पर्याय स्वरूपसे उत्पत्ति देखी जाती है। कथंचित् वह असत् उत्पन्न होता है, क्योंकि, पिण्डरूप आकारसे नष्ट हुए पुद्गल द्रव्यकी घट स्वरूपसे उत्पत्ति देखी जाती है। कथंचित् अवक्तव्य कार्य उत्पन्न होता है, क्योंकि, अर्थ पर्यायोंकी अपेक्षा वचनके अविषयभूत पुद्गल द्रव्यकीघट स्वरूपसे उत्पत्ति देखी जाती है, अथवा अपने स्वरूपको न छोड़कर परस्परमें अनुगत होनेसे जात्यन्तर भावको प्राप्त हुए विधि-प्रतिषेध धर्मोंको कहनेवाले शब्दका अभाव है, इसलिये भी कार्य अवक्तव्य उत्पन्न होता है।

**मावण्णाणं पदुप्पायणसद्दाभावादो वा । कुदो जच्चंतरत्तं ? संजोग-समवाएहि विणा अण्णोण्णाणुगयत्तादो । को संजोगो ? पुधप्पसिद्धाणं मेलणं संजोगो । को समवाओ? एगत्तेण अजुवसिद्धाणं मेलणं । ण विहिप्पडिसेहाणं✿ संजोगो, पुधप्पसिद्धीए अभावादो । ण समवाओ वि, सामण्णसरूवेण सव्वकालमण्णोण्णाजहावुत्तीए ट्ठिदाण संबंधाणुववत्तीदो । ण च एयंतेण दुविहसंबंधाभावो, विहि❀-प्पडिसेहविसेसं पडुच्च तदुभयसंबंधुवलंभादो । ण च विहि-प्पडिसेहाणं पुधभावो णत्थि, भिण्णपच्चयगेज्झत्तेण पुधभूददव्वावट्ठाणेण च तदुवलंभादो । तदो सिद्धं जच्चंतरत्तं ।**

**सिया संतमसंतं च उप्पज्जदि णेगमणयावलंबणेण । को णेगमो? यदस्ति न तद्वयमतिलंघ्य वर्तत इति नैकगमो नैगमः । सिया संतं च अवत्तव्वं च अवत्तव्वेण सह विहिधम्मप्पणाए । एवं णेगमणयमस्सिदूण ट्ठिदसेसभंगाणं पि अत्थो वत्तव्वो । ण च**

---

शंका— जात्यन्तरता क्यों है ?

समाधान— कारण कि वे विधि-प्रतिषेध धर्म संयोग व समवायके विना परस्परमें अनुगत हैं ।

शंका— संयोग किसे कहते हैं ?

समाधान— पृथक् प्रसिद्ध पदार्थोंमें मेलको संयोग कहते हैं ।

शंका— समवाय किसे कहते हैं ?

समाधान— अयुतसिद्ध पदार्थोंका एक रूपसे मिलनेका नाम समवाय है ।

विधि और प्रतिषेध धर्मोंका संयोग तो संभव नहीं है, क्योंकि, उनमें पृथक्सिद्धत्वका अभाव है । समवायकी भी सम्भावना नहीं हैं, क्योंकि, सामान्य स्वरूपसे सब कालमें परस्पर अजहत् वृत्तिसे स्थित उक्त दोनों धर्मोंका सम्बन्ध नहीं बन सकता । और एकान्ततः इन दो प्रकारके सम्बन्धोंका अभाव हो, ऐसा भी नहीं है; क्योंकि, विधि-प्रतिषेधविशेषकी अपेक्षा वे दोनों सम्बन्ध पाये जाते हैं । विधि व प्रतिषेध धर्मोंके भिन्नता नहीं हो, यह भी बात नहीं है, क्योंकि, भिन्न प्रत्यय द्वारा ग्राह्य होनेसे तथा पृथग्भूत द्रव्योंमें रहनेसे उनमें भिन्नता पायी जाती है । इसलिये उनमें जात्यन्तरत्व सिद्ध है ।

नैगम नयकी अपेक्षा कथंचित् सत् व असत् कार्य उत्पन्न होता है ।

शंका— नैगम नय किसे कहते हैं ?

समाधान— ' जो विद्यमान है वह भेद व अभेद इन दोनोंका उल्लंघन करके नहीं रहता ' इस कारण जो उन दोनोंमेंसे किसी एकको विषय न करके विवक्षाभेदसे दोनोंको ही विषय करता है वह नैगम नय कहा जाता है ।

अवक्तव्यके साथ विधि धर्मकी प्रधानतासे कार्य कथंचित् सत् व अवक्तव्य उत्पन्न होता है । इसी प्रकार नैगम नयका आश्रय करके स्थित शेष भंगोंके भी अर्थका कथन करना चाहिये ।

---

✿ ताप्रतौ ' विहिपडिसेहणं ' इति पाठः । ❀ काप्रतौ ' विविंहृ ' इति पाठः ।

**एत्थ पुव्वुत्तदोसा संभवंति, एयंतविसयाणं दोसाणमणेयंते संभवविरोहादो। को अणेयंतो णाम? जच्चंतरत्तं। उप्पत्ती णाम ण परदो, अणवत्थापसंगादो। ण सदो, असंतस्स कारणत्ताणुववत्तीदो। दीसइ च सव्वत्थाणं सत्तं, तदो णिच्चा सव्वत्था त्ति णत्थि कज्जुप्पत्ती? ण एस दोसो, पमाणगोयरमइक्कंतस्स णिच्चत्थस्स अत्थित्तविरोहादो। णिच्चत्थो पमाणविसयमइक्कंतो, अक्कमेण कमेण वा तत्थ कम्म-कत्तारपज्जायाणमभावादो, भावे च अणिच्चत्तप्पसंगादो। ण च कज्जं परदो चेव उप्पज्जदि सदो वा, दव्व-खेत्त-काल-भावे पडुच्च उप्पज्जमाणकज्जुवलंभादो। ण च पमाणेण विसईकयत्थो पमाणपडिकूलदाए✪ अवगयअप्पमाणत्तेहि वियप्पाभासेहि अण्णहा काउं सक्किज्जदि, अव्ववत्थापसंगादो।**

**वत्थुविणासो ण परदो होदि, पसज्ज-पज्जुदासलक्खणअभावाणमण्णेहिंतो उप्पत्ति-**

---

यहां पूर्वोक्त ( सत् व असत् एकान्त पक्षमें दिये गये ) दोषोंकी भी सम्भावना नहीं है, क्योंकि, एकान्तको विषय करनेवाले दोषोंकी अनेकान्तके विषयमें सम्भावना नहीं है।

शंका— अनेकान्त किसे कहते हैं ?

समाधान— जात्यन्तरभावको अनेकान्त कहते हैं।

शंका— उत्पत्ति किसी दूसरेसे नहीं हो सकती, क्योंकि, ऐसा होनेपर अनवस्थाका प्रसंग आता है। ( अर्थात् विवक्षित घटादि कार्योंकी उत्पत्ति जिस किसी दूसरेसे होती हैं, वह भी अन्य किसी दूसरेसे ही उत्पन्न होगा। इस प्रकार उत्तरोत्तर कल्पना करनेपर व्यवस्था नहीं बनेगी, इसलिये अनवस्था दोष सम्भव है। ) यदि कहा जाय कि कार्य किसी दूसरेसे उत्पन्न न होकर स्वतः उत्पन्न होता है, तो यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि, असत् पदार्थके कारणता बन नहीं सकती। और चूंकि सब पदार्थोंका सत्त्व देखनेमें आता है, इसीलिये समस्त पदार्थोंके नित्य होनेसे कार्यकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, नित्य पदार्थ चूंकि प्रमाणगोचर नहीं है, अर्थात् प्रत्यक्ष व अनुमानादि किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है, अत एव उसके अस्तित्वका विरोध है। नित्य अर्थ प्रमाणका विषय नहीं है, क्योंकि, युगपत् अथवा क्रमसे उसमें कर्म व कर्ता रूप पर्यायोंका अभाव है। और यदि उनका सद्भाव है तो फिर उसके अनित्य होनेका प्रसंग आता है। इसके अतिरिक्त कार्य परसे ही उत्पन्न होता हो अथवा स्वतः ही उत्पन्न होता हो, यह बात भी नहीं है; क्योंकि, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका आश्रय करके उत्पन्न होनेवाला कार्य पाया जाता है। दूसरे, प्रमाणके प्रतिकूल होनेसे जिनकी अप्रमाणता ज्ञात हो चुकी है ऐसे विकल्पाभासों ( परतः उत्पन्न हैं या स्वतः उत्पन्न हैं, इत्यादि ) के द्वारा प्रमाणसे विषय किया गया पदार्थ अन्यथा करनेके लिये शक्य नहीं है, क्योंकि, इस प्रकारसे अव्यवस्थाका प्रसंग आता है।

शंका— वस्तुका विनाश परके निमित्तसे नहीं होता है, क्योंकि, प्रसज्य व पर्युदासरूप

---

✪ काप्रतौ 'पडिकुलदाए' इति पाठः।

**विरोहादो । तदो णिरहेउओ विणासो । वुत्तं च भास्से✿ –**

जातिरेव हि भावानां निरोधे हेतुरिष्यते ।
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत् पश्चात् स केन वः? ॥ ६ ॥

**खणक्खइणो च ण कज्जमुप्पज्जदि, उप्पण्णुप्पज्जमाणेहिंतो कज्जुप्पत्ति-विरोहादो । तदो ण कज्जमुप्पज्जदि त्ति? ण, उप्पत्तीए विणा खणखइत्तविरोहादो। ण चाणुप्पण्णं विणस्सदि, गद्दहसिंगस्स वि विणासप्पसंगादो✿ । ण च खणक्खइ-वत्थू अत्थि, पमाणपमेयाणमभावप्पसंगादो । वुत्तं च–**

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसम्भवः ।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम्✿ ॥ ७ ॥

**तदो उप्पाद-ट्ठिदि-भंगलक्खणं सव्वं दव्वं ति इच्छेयव्वं । उत्तं च–**

---

अभावोंका दूसरोंसे उत्पन्न होनेका विरोध है। इसीलिये विनाश निर्हेतुक है। कहा भी है भाष्य में-

पदार्थोंके विनाशमें जाति ( उत्पत्ति ) को ही कारण माना जाता है। परन्तु जो उत्पन्न होकर भी नष्ट नहीं होता है वह फिर पीछे आपके यहां किसके द्वारा नाशको प्राप्त होगा ? नहीं हो सकेगा ॥ ६ ॥

दूसरे, क्षणक्षयी कारणसे कार्य उत्पन्न भी नहीं हो सकता है, क्योंकि उत्पन्न अथवा उत्पद्यमान कारणोंसे कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है । इस कारण कार्य उत्पन्न नहीं होता ।

समाधान– ऐसा जो बौद्धका कहना है वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उत्पत्तिके विना क्षणक्षयित्वका विरोध है । पदार्थ उत्पन्न हुए विना नष्ट नहीं हो सकता; क्योंकि, वैसा स्वीकार करनेपर गधेके सींगके भी विनाशका प्रसंग आता है । दूसरे क्षणक्षयी वस्तुका अस्तित्व ही सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेपर प्रमाण और प्रमेय दोनोंके अभावका प्रसंग आता है । कहा भी है–

क्षणिक एकान्त पक्षमें भी प्रत्यभिज्ञान आदिका अभाव होनेसे कार्यका आरम्भ नहीं हो सकता, और जब कार्यका आरम्भ नहीं हो सकता है तब उसके अभावमें भला पुण्य एवं पाप रूप फलकी सम्भावना कहांसे की जा सकती है ? तथा पुण्य व पापका अभाव होनेपर जन्मान्तर रूप प्रेत्यभाव एवं बन्ध–मोक्षादिका भी सद्भाव नहीं रह सकता ॥ ७ ॥

विशेषार्थ– सब पदार्थ क्षणक्षयी हैं, ऐसा एकान्त स्वीकार करनेपर स्मृति व प्रत्यभिज्ञान आदिकी सम्भावना नहीं की जा सकती है । कारण कि स्मृति पूर्वमें अनुभव किये गये पदार्थके विषयमें ही होती है । परन्तु जिसका वर्तमानमें अनुभव किया गया है वह तो उसी क्षणमें उत्पन्न होनेके साथ ही नष्ट हो चुका । इस प्रकार विषयका अभाव होनेसे स्मरण ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता । स्मरणके अभावमें प्रत्यभिज्ञान भी असम्भव है, क्योंकि, प्रत्यक्ष व स्मरणके

---

✿ काप्रतौ 'भाष्ये', ताप्रतौ नोपलभ्यते पदमिदम्। ? उद्धृतेयं कारिका कसायपाहुडे १, पृ० २२७. ✿ काप्रतौ 'विणासपसंगादो वि' इति पाठः । ✿ आ. मी. ४१.

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ✿ ॥ ८ ॥
पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम् ✿ ॥ ९ ॥

---

निमित्तसे ' यह वही देवदत्त है, गायके सदृश गवय होता है ' इस प्रकार जो एकत्व व सादृश्य आदि विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है उसे प्रत्यभिज्ञान कहा जाता है। पदार्थके सर्वथा क्षणिक होनेपर पूर्वोत्तर अवस्थाओंमें रहनेवाले एकत्व आदि धर्मोंके असम्भव होनेसे उक्त लक्षणवाले प्रत्यभिज्ञानकी भी सम्भावना नहीं की जा सकती है। इस प्रकार स्मरण व प्रत्यभिज्ञान आदिके साथ ही पूर्वोत्तर अवस्थाओंमें अवस्थित एक प्रमाता आत्माके भी न रह सकनेसे कार्यका आरम्भ नहीं हो सकता। कार्यके अभावमें उसके फल स्वरूप पुण्य-पाप एवं बन्ध-मोक्ष आदि भी नहीं बन सकते। अतएव वह क्षणिक एकान्त पक्ष ग्राह्य नहीं है।

इसलिये सब द्रव्यको उत्पाद, स्थिति ( ध्रौव्य ) व भंग ( व्यय ) स्वरूप स्वीकार करना चाहिये। कहा भी है---

घट, मुकुट और सुवर्णसामान्यका अभिलाषी यह मनुष्य क्रमशः घटके नाश, मुकुटके उत्पाद और सुवर्णसामान्यकी स्थितिमें शोक, प्रमोद एवं माध्यस्थ्य भावको प्राप्त होता है। यह सहेतुक है, अकारण नहीं है ॥ ८ ॥

विशेषार्थ– यहां वस्तुको उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य स्वरूप सिद्ध करनेके लिये निम्न प्रकार लौकिक दृण्टान्त दिया गया है–कल्पना कीजिये कि तीन मनुष्य क्रमसे सुवर्णघट, सुवर्णका मुकुट एवं सुवर्णसामान्यकी अभिलाषासे किसी विशेष दूकानपर जाते हैं। इसी समय दूकानदारके द्वारा सुवर्णघटको नष्ट करके मुकुटका निर्माण करानेपर उनमेंसे सुवर्णघटका अभिलाषी दुखी, मुकुटका अभिलाषी हर्षित और सुवर्णसामान्यका ग्राहक हर्ष-विषाद दोनोंसे ही रहित होकर मध्यस्थ रहता है। अब यदि कार्यका विनाश न होता तो घटके नष्ट होनेपर तदभिलाषी व्यक्तिको दुखी न होना चाहिये था। इसी प्रकार यदि कार्यका उत्पाद न होता तो मुकुटाभिलाषी व्यक्तिका हर्षित होना असंगत था। निरन्वय विनाशके होनेपर ( ध्रौव्यके अभावमें ) सुवर्णसामान्यके ग्राहककी उदासीनता भी स्थिर नहीं रह सकती थी। परन्तु चूंकि व्यवहारमें वैसा देखा जाता है, अतएव द्रव्यको उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य स्वरूप मानना ही चाहिये।

' मैं केवल दूधको ग्रहण करूंगा ' ऐसा नियम लेनेवाला व्यक्ति दहीको नहीं खाता है, 'मैं केवल दही खाऊंगा' ऐसा नियम रखनेवाला व्यक्ति दूधको नहीं लेता है, तथा ' मैं गोरससे भिन्न पदार्थको ग्रहण करूंगा ' ऐसा व्रत लेनेवाला व्यक्ति दूध व दही दोनोंको ही नहीं खाता है। इसीलिये वस्तुतत्त्व उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य इन तीनों स्वरूप है ॥ ९ ॥

विशेषार्थ– पर्याय स्वरूपसे होनेवाले उत्पाद व व्ययमें न सर्वथा भेद है और न सर्वथा अभेद ही है, किन्तु वे कथंचित् भेदाभेदको प्राप्त हैं। कारण कि दूधके अपने स्वरूपको छोड़कर दही रूपमें परिणत होनेपर भी यदि उनमें सर्वथा अभेद ही स्वीकार किया जाय तो दूधका

---

✿ आ. मी. ५९. ✿ आ. मी. ६०

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात् ।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ✿ ।। १० ।।

**सव्वं पि वत्थु पि विहि-पडिसेहप्पयं ति घेत्तव्वं, अण्णहा कज्ज-कारणभाव-विरोहादो । वुत्तं च--**

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात् ।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ✿ ।। ११ ।।

---

नियम करनेवालेके दहीका ग्रहण तथा दहीका नियम करनेवालेके दूधका ग्रहण करना अनुचित ठहरेगा। उसी प्रकार अन्वय प्रत्ययके विषयभूत गोरस सामान्यसे भी दूध व दही रूप विशेषोंको यदि सर्वथा भिन्न स्वीकार किया जाय तो गोरस-भिन्न भोजनका नियम करनेवालेके उन दोनोंका त्याग करना अयुक्तिसंगत होगा। परन्तु ऐसा है नहीं, अतएव सिद्ध है कि वस्तुतत्त्व अनेकान्तसे अनुगत होकर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप ही है।

कोई भी वस्तु सामान्य स्वरूपसे न उत्पन्न होती है और न नष्ट भी होती है, क्योंकि, इनमें सामान्य स्वरूपसे स्पष्टतया अन्वय देखा जाता है। किन्तु वही विशेष स्वरूपसे नष्ट भी होती है और उत्पन्न भी होती है। हे भगवन् ! इस प्रकार आपके मतमें एक ही वस्तुमें उत्पादादि तीनों ही एक साथ रहते हैं। इन्हीं तीनोंसे युक्त वस्तुको सत् कहा जाता है ।।१०।।

विशेषार्थ-- पूर्वोत्तर पर्यायोंमें रहनेवाले साधारण स्वभावका नाम सामान्य है, जैसे सुवर्णसे उत्तरोत्तर होनेवाली कटक व कुण्डलादि रूप पर्यायोंमें सुवर्णसामान्य। इसकी अपेक्षा वस्तुका उत्पाद व विनाश सम्भव नहीं है, क्योंकि, कटकरूप पर्यायका नाश होकर कुण्डलरूप पर्यायके उत्पन्न होनेपर भी 'यह वही सुवर्ण है जिसके पहिले कटक बनवाये गये थे' ऐसा अन्वय प्रत्यय पाया जाता है। उत्पाद व विनाश केवल विशेष (पर्याय) की अपेक्षा होता है। यदि कटक व कुण्डल रूप आकारके समान सुवर्णद्रव्यका भी विनाश व उत्पाद हुआ तो उन दोनोंमें समान रूपसे सुवर्णत्वका बोध नहीं हो सकता था। परन्तु होता अवश्य है, अत: सिद्ध है कि सामान्य स्वरूपसे वस्तु उत्पाद-व्ययसे रहित होकर कथंचित् नित्य और वही विशेषकी अपेक्षा कथंचित् अनित्य भी है। ये सामान्य और विशेष धर्म भी परस्पर सापेक्ष रहते हैं, न कि निरपेक्ष। इस प्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनों ही वस्तुमें एक साथ पाये जाते हैं। इन्हीं तीनोंसे युक्त वस्तुको सत् कहा जाता है और यही द्रव्यका लक्षण है।

सभी वस्तु विधि-प्रतिषेधात्मक है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि, इसके विना कार्य-कारणभावका विरोध है। कहा भी है--

अस्तित्वविषयक एकान्त पक्षमें अभावोंका अपलाप होनेसे दूसरोंके मतमें पदार्थोंके सर्वरूपता, अनादिता, अनन्तता और अस्वरूपताका प्रसंग आता है ।। ११ ।।

विशेषार्थ-- सांख्योंका अभिमत है कि सब पदार्थ सत्स्वरूप ही हैं, कोई भी असत् (अभाव) स्वरूप नहीं है। उनमें जो परावर्तित अवस्थायें देखी जाती हैं वे आविर्भाव व तिरोभावके कारण होती हैं। उनके यहां निम्न २५ तत्त्व स्वीकार किये गये हैं- पुरुष, प्रकृति, महान्

---

✿ आ. मी ५७. ✿ आ. मी ९.

कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निह्नवे ।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ✿ ॥ १२ ॥
सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे ।
अन्यत्रसमवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा ❁ ॥ ३१ ॥

---

( बुद्धि ), अहंकार, ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय (वाक् पाणि, पाद, पायु व उपस्थ), मन, पांच तन्मात्र ( गन्ध, रस, रूप, स्पर्श व शब्द ) और पांच भूत ( पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश ) । इनमें प्रकृति कर्त्री और पुरुष भोक्ता है । प्रकृतिसे महान्, महान्से अहंकार, अहंकारसे ग्यारह इन्द्रियां व पांच तन्मात्र, तथा पांच तन्मात्रोंसे पांच भूतोंका आविर्भाव और इसके विपरीत क्रमसे उन सबका तिरोभाव ( जैंसे पृथिव्यादि पांच भूतोंका तिरोभाव गन्धादि पांच तन्मात्रोंमें ) होता है । इस प्रकार सांख्यमतमें सब कार्य सत् ही हैं । उनके इस एकान्त पक्षको दूषित करते हुए उपर्युक्त कारिकामें कहा गया है कि सब पदार्थोंको सर्वथा सत् माननेपर अन्योन्याभाव, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव, ये चारों ही अभाव नहीं बन सकेंगें । इनमेंसे महान् व अहंकारादिमें प्रकृतिका तथा प्रकृतिमें महदादिका अन्योन्याभाव न रहनेसे महदादिक प्रकृतिस्वरूप व प्रकृति महदादिस्वरूप भी हो सकती है । इस प्रकार अन्योन्याभावके अभावमें सबके सब स्वरूप हो जानेका प्रसंग अनिवार्य होगा । इसी प्रकार प्रागभाव ( कार्योत्पत्तिके पूर्वमें उसका अभाव ) के न रह सकनेसे महदादिके अनादिताका तथा प्रध्वंसाभाव ( विनाश ) के न रहनेसे उनके अनन्तताका प्रसंग भी दुर्निवार होगा । साथ ही प्रकृतिमें भोक्तृत्वका तथा पुरुषमें कर्तृत्वका अत्यन्ताभाव न रहनेपर प्रकृति व पुरुषका कोई निश्चित लक्षण भी नहीं बन सकेगा, अतः निःस्वरूपताका प्रसंग भी कैसे टाला जा सकेगा ? इसीलिये उक्त एकान्त पक्ष ग्राह्य नहीं हो सकता ।

प्रागभावका अपलाप होनेपर कार्यरूप द्रव्यके अनादि हो जानेका प्रसंग आता है । तथा प्रध्वंसरूप धर्मका ( प्रध्वंसाभावका ) अभाव होनेपर वह अनन्तता ( अविनश्वरता ) को प्राप्त हो जावेगा ॥ १२ ॥

विशेषार्थ— कार्यके उत्पन्न होनेके पूर्वमें जो उसकी अविद्यमानता है उसे प्रागभाव कहा जाता है । इसको न माननेपर घट-पटादि कार्य अपने स्वरूपलाभ ( उत्पत्ति ) के पूर्वमें भी विद्यमान ही रहना चाहिये । इस प्रकार प्रागभावके अभावमें घटादि कार्योंके अनादि हो जानेका अनिष्ट प्रसंग आता है । कार्यके विनाशका नाम प्रध्वंसाभाव है । इसे स्वीकार न करनेपर चूंकि घटादि कार्योंका उत्पन्न होनेके पश्चात् कभी विनाश तो होगा ही नहीं, अत एव उनके अनन्त ( अन्त रहित ) हो जानेका प्रसंग आता है । परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि, घटादि पर्यायविशेषोंका अपनी उत्पत्तिके पूर्वमें और विनाशके पश्चात् उन उन आकारविशेषोंमें अवस्थान देखा नहीं जाता । अत एव यह स्वीकार करना चाहिये कि पदार्थ सर्वथा भाव (अस्तित्व) स्वरूप नहीं है, किन्तु अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा वे कथंचित् भावस्वरूप तथा दूसरे पदार्थोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा कथंचित् अभावस्वरूप भी हैं ।

अन्यापोह ( अन्योन्याभाव ) का उल्लंघन होनेपर विवक्षित कोई एक तत्त्व सब तत्त्वों

---

✿ आ. मी. १०. ❁ आ. मी. ११.

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम् ।
बोध-वाक्यं प्रमाणं न केन साधन-दूषणम् ✪ ।। १४ ।।
विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ✽ ।। १५ ।।

---

स्वरूप हो जावेगा । अन्यत्रसमवाय, अर्थात् ज्ञानादि गुणविशेषोंका अपने समवायी (आत्मादि) के अतिरिक्त दूसरे समवायीमें समवाय होनेपर अर्थात् अत्यन्ताभावके अभावमें अभीष्ट स्वरूपसे किसी भी तत्त्वका निर्देश नहीं किया जा सकेगा ।। १३ ।।

विशेषार्थ-- विवक्षित स्वभावकी दूसरे स्वभावोंसे रहनेवाली भिन्नताका नाम अन्योन्याभाव है, जैसे गायरूप स्वभाव । पर्याय ) की अश्वादि स्वभावोंसे रहनेवाली भिन्नता । इस अन्योन्याभावको न माननेपर गाय अश्वस्वरूप और अश्व गायस्वरूप भी हो सकता है । इस प्रकार द्रव्यकी सब पर्यायें सभी पर्यायों स्वरूप हो सकती हैं । इससे लोकव्यवहारका विरोध होगा । अत एव द्रव्यकी विभिन्न पर्यायोंमें परस्पर भेदको प्रगट करनेवाले अन्योन्याभावको स्वीकार करना ही चाहिये । एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यसम्बन्धी असाधारण गुणोंके त्रैकालिक अभावको अत्यन्ताभाव कहा जाता है, जैसे पुद्गल द्रव्यमें चैतन्य गुणका अभाव और जीव द्रव्यमें रहनेवाला रूपादि गुणोंका अभाव । इस अत्यन्ताभावको स्वीकार न करनेसे एक द्रव्यके गुणोंका दूसरे द्रव्यमें समवाय सम्भव होनेपर दूसरोंके द्वारा कल्पित प्रकृति-पुरुषादिरूप तत्त्वोंका नियमित स्वरूप नहीं बन सकेगा । अत एव तत्त्वव्यवस्थाको स्थिर रखनेके लिये अत्यन्ताभावका भी अपलाप नहीं किया जा सकता है ।

'कोई भी पदार्थ सत्स्वरूप नहीं है' इस प्रकारसे सर्वथा अभाव पक्षको स्वीकार करनेपर भी सत्स्वरूपताका अपलाप करनेवाले शून्यैकान्तवादियों ( माध्यमिक ) के यहां बोधरूप स्वार्थानुमान और वाक्यरूप पदार्थानुमान प्रमाणका भी सद्भाव नहीं रह सकेगा । ऐसी अवस्थामें शून्यता रूप स्वपक्षकी सिद्धि किस प्रमाणसे की जावेगी, तथा सत्स्वरूप पदार्थको स्वीकार करनेवाले अन्य वादियोंके पक्षको दूषित भी किस प्रमाणके द्वारा किया जावेगा ? ।। १४ ।।

विशेषार्थ--- 'पदार्थोंकी जिस स्वरूपसे प्ररूपणा की जाती है वह उनका स्वरूप वास्तवमें ह नहीं, क्योंकि, पदार्थोंके एकानेकरूपता बनती नहीं है । अत एव बाह्य या आभ्यन्तर कोई भी पदार्थ सत्स्वरूप नहीं है ।' यह शून्यैकान्तवादी माध्यमिकोंका अभिमत है । इस एकान्त पक्षको असंगत बतलाते हुए यहां कहा गया है कि जो वादी शून्यमय जगत्को स्वीकार करते हैं उनके यहां सत् स्वरूप किसी भी पदार्थके न रहनेसे अपने अभीष्ट ( शून्यता ) पक्षके साधक और परपक्ष ( सत्स्वरूपता ) को दूषित करनेवाले अनुमानादि प्रमाणकी भी सत्ता सम्भव नहीं है । और ऐसा होनेपर प्रमाणके अभावमें उनका अभीष्ट तत्त्व भी सिद्ध नहीं हो सकता । इसलिये यदि स्वपक्षको सिद्ध करनेके लिये किसी प्रमाणविशेषकी सत्ता स्वीकार की जाती है तो उसके सद्भावमें 'सर्वथा शून्यमय जगत् है' वह उनका एकान्त पक्ष नहीं रहता ।

'पदार्थ सत् व असत् स्वरूप हैं' इस प्रकार अनेकान्तविरोधियोंके यहां उभयस्वरूपताका भी एकान्त पक्ष नहीं बनता, क्योंकि, उसमें विरोध है । तथा 'पदार्थ सर्वथा वचनके अगोचर

---

✪ आ मी १२ ✽ आ. मी. १३.

कथंचित्ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत् ।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ✪ ॥ १६ ॥

---

हैं ' इस प्रकारका भी एकान्त पक्ष सम्भव नहीं है, क्योंकि, वैसा होनेपर ' अवाच्य हैं ' इस वाक्यका प्रयोग भी अयुक्त होगा ॥ १५ ॥

विशेषार्थ-- जो वादी पदार्थको सत् व असत् (उभय) स्वरूप मानकर भी उन दोनों धर्मोंमें परस्पर सापेक्षता स्वीकार नहीं करते उनके यहां उभयस्वरूपता भी असम्भव है, क्योंकि, जिस स्वरूपसे वे सत् हैं उसी स्वरूपसे उन्हें असत् माननेमें विरोध आता है । इस प्रकार स्याद्वाद न्यायके विना उक्त प्रकारसे उभय स्वरूपता भी नहीं बनती । किन्तु स्याद्वादका अवलम्बन करनेपर पदार्थको उभय ( सत्-असत् ) स्वरूप माननेमें कोई विरोध नहीं रहता । कारण कि स्वकीय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा सत्स्वरूप वस्तुको परकीय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा असत्स्वरूप भी मानना ही पडेगा, क्योंकि, इसके विना सबके सब स्वरूप हो जानेका अनिवार्य प्रसंग आनेसे घट-पटादि पदार्थोंमें विभिन्नरूपता सम्भव नहीं है । जो वादी ( बौद्ध ) सत् व असत् पक्षोंमें दिये गये दोषोंके परिहारकी इच्छासे तत्त्वको अवक्तव्य स्वीकार करते हैं वे अपने इस अभिमतका परिज्ञान दूसरोंको किस प्रकारसे करावेंगे ? कारण कि स्वसंवेदनसे तो दूसरोंको समझाया नहीं जा सकता है । यदि कहा जाय कि ' तत्त्व क्षणक्षयी व कल्पनातीत होनेसे अवाच्य है ' इत्यादि वाक्योंके द्वारा दूसरोंको समझाया जा सकता है, सो यह भी उचित नहीं है; क्योंकि, ऐसा होनेपर ' सर्वथा अवक्तव्य है ' यह सिद्धान्त स्वयमेव खण्डित हो जाता है । यह कथन तो उस व्यक्तिके समान स्ववचनबाधित है जो कि ' मै मौनव्रती हूं ' इन शब्दोंके द्वारा अपने मौनव्रतकी सूचना देता है ।

हे भगवन् ! आपका अभीष्ट तत्त्व कथंचित् सत् स्वरूप ही है, वह कथंचित् असत् स्वरूप ही है, कथंचित् उभय ( सत्-असत् ) स्वरूप भी है, और कथंचित् अवाच्य भी है । वह अभीष्ट तत्त्व नयके सम्बन्धसे ऐसा है, सर्वथा वैसा नहीं है ॥ १६ ॥

विशेषार्थ-- उक्त प्रकारसे सत्, असत्, उभय और अवाच्य स्वरूप एकान्त पक्षोंमें दोषोंको दिखाकर यहां इस कारिकाके द्वारा सप्तभंगीको प्रगट किया गया है । यद्यपि कारिकामें चार ही भंगोंका निर्देश है, तथापि उसमें प्रयुक्त ' च ' शब्दके द्वारा शेष तीन भंगोंकी भी सूचना कर दी गयी है । प्रश्नके वश एक ही वस्तुमें विधि व निषेधकी कल्पना करनेको सप्तभंगी कहा जाता है । वह नयविवक्षाके अनुसार ही सम्भव है, न कि सर्वथा । वे सात भंग निम्न प्रकार हैं- (१) कथंचित् घट सत् स्वरूप है । इसमें द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे विधिकी कल्पना की गई है, क्योंकि, घटादिक सभी पदार्थ अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे सत् स्वरूप ही हैं । यदि उन्हें अपने द्रव्यादिककी अपेक्षा सत् न माना जाय तो फिर वे खरविषाणके समान वस्तु ही नहीं रहेंगे । (२) कथंचित् घट असत् स्वरूप है । इसमें पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतासे प्रतिषेधकी कल्पना की गई है, क्योंकि, परकीय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे घट असत् ही है । यदि परकीय द्रव्यादिकी अपेक्षा विवक्षित वस्तुको असत् न स्वीकार किया जावे तो जिस प्रकार घट

---

✪ आ मी १४. सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं । दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥ पंचा. १४.

**ण च एयादो अणेयाणं कम्माणं वुप्पत्ती विरूद्धा, कम्मइयवग्गणाए अणंताणंत-संखाए अट्ठकम्मपाओग्गभावेण अट्ठविहत्तमावण्णाए एयत्तविरोहादो। णत्थि एत्थ एयंतो, एयादो घडादो अणेयाणं खप्पराणमुप्पत्तिदंसणादो। वुत्तं च--**

कम्मं ण होदि एयं अणेयविहमेय बंधसमकाले।
मूलुत्तरपयडीणं परिणामवसेण जीवाणं ॥ १७ ॥

**जीवपरिणामाणं भेदेण परिणामिज्जमाणकम्मइयवग्गणाणं भेदेण च कम्माणं बंध-समकाले चेव अणेयविहत्तं होदि त्ति घेत्तव्वं। कधं मुत्ताणं कम्माणममुत्तेण जीवेण सह संबंधो? ण,✿ अणादिबंधणबद्धस्स जीवस्स संसारावत्थाए अमुत्तत्ताभावादो। अणादिबंधो**

---

स्वकीय द्रव्यादिसे सत् है, उसी प्रकार वह परकीय द्रव्यादिककी अपेक्षा भी सत् ही ठहरेगा। और वैसा होनेपर 'यह घट है, पट नहीं है' इस प्रकारका भेद न रह सकनेसे सबके सब स्वरूप हो जानेका प्रसंग अनिवार्य होगा। अतएव अपने द्रव्यादिकी अपेक्षा वस्तु जैसे सत् है वैसे ही वह परकीय द्रव्यादिकी अपेक्षा असत् भी है, यह मानना ही चाहिये। (३) कथंचित् घट सत् व असत् (उभय) स्वरूप है। यहां द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा क्रमसे विधि व प्रतिषेधकी कल्पना की गई है। कारण कि यदि ऐसा न माना जावे तो फिर घटादि वस्तुओंमें क्रमशः होनेवाले सत् व असत् रूप विकल्पके व्यवहारका विरोध होगा। (४) कथं-चित् घट अवक्तव्य है। इसमें युगपत् विधि व प्रतिषेधकी कल्पना की गई है। चूंकि सत् व असत् रूप दोनों धर्मोंको एक साथ सूचित करनेवाला कोई भी शब्द सम्भव नहीं है, अतएव उस अवस्थामें वस्तुको अवक्तव्य मानना उचित ही है। 'च' शब्दसे सूचित शेष तीन भंग-- (५) कथंचित् घट सत् व अवक्तव्य है। यहां विधिके साथ ही युगपत् विधि व प्रतिषेध की कल्पना की गई है। (६) कथंचित् घट असत् व अवक्तव्य है। यहां प्रतिषेधके साथ युगपत् विधि व प्रतिषेधकी कल्पना की गई है। (७) कथंचित् घट सत्-असत् व अवक्तव्य है। यहां क्रमशः विधि व प्रतिषेधकी कल्पनाके साथ युगपत् भी विधि व प्रतिषेधकी कल्पना की गई है। इस प्रकार ये सात वाक्य ही सम्भव हैं। प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ भंगोंमें दो अथवा तीनके संयोग से उत्पन्न वाक्य इन्हींमें अन्तर्भूत होंगे, उनसे भिन्न सम्भव नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त एकसे अनेक कर्मोंकी उत्पत्ति विरुद्ध है, ऐसा कहना भी अयुक्त है; क्योंकि, आठ कर्मोंकी योग्यतानुसार आठ भेदको प्राप्त हुई अनन्तानन्त संख्यारूप कार्मण वर्ग-णाको एक माननेका विरोध है। दूसरे, एकसे अनेक कार्योंकी उत्पत्ति नहीं होती; ऐसा एकान्त भी नहीं है, क्योंकि, एक घटसे अनेक खप्परोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। कहा भी है--

कर्म एक नहीं है, वह जीवोंके परिणामानुसार मूल व उत्तर प्रकृतियोंके बन्धके समानकालमें ही अनेक प्रकारका है ॥ १७ ॥

जीवपरिणामोंके भेदसे और परिणमायी जानेवाली कार्मण वर्गणाओंके भेदसे बन्धके समकालमें ही कर्म अनेकप्रकारका होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

शंका-- मूर्त कर्मोंका अमूर्त जीवके साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, अनादिकालीन बन्धनसे बद्ध रहनेके कारण जीवका संसार

---

✿ ताप्रतौ 'ण' इत्येतत्पदं नास्ति।

**कुदो णव्वदे ? जीव-सरीराणं वट्टमाणबंधण्णहाणुववत्तीदो। ण च वट्टमाणबंधघडावणट्ठं जीवस्स वि✪रूवित्तं वोत्तुं जुत्तं, जीव-देहाणं महापरिमाणत्तादो रूवित्तणेण च उवलद्धिलक्खणपत्ताणं रूव-रस-गंध-पासाणं पुधभूदाणमुवलंभप्पसंगादो। किं च- ण जीवदव्वमत्थि, रूपिणः पुद्गलाः❋' इच्चेदेण लक्खणेण जीवाणं पोग्गलेसु अंतब्भावादो। ण च दव्वं दव्वंतरस्स असाहारणगुणेण परिणमइ, अच्चंताभावेण णिरुद्धपवुत्तीदो। काणि दव्वाणमसाहारणलक्खणाणि ? चेयणलक्खणं जीवदव्वं, रूव-रस-गंध-पासलक्खणं पोग्गलदव्वं, ओगाहणलक्खणमायासदव्वं, जीव-पोग्गलाणं गमणागमणणिमित्तकारणं धम्मदव्वं, तेसिमवट्ठाणस्स णिमित्तकारणलक्खणमधम्मदव्वं, दव्वाणं परिणमणस्स णिमित्तकारणलक्खणं कालदव्वं। किं दव्वं णाम ? स्वकासाधारणलक्षणापरित्यागेन द्रव्यांतरासाधारणलक्षणपरिहारेण द्रवति द्रोष्यत्यदुद्रुवत् तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं✿। तदो जीवो अमुत्तो चेव, पोग्गलस्स असाहारणगुणेहि तस्स परिणामाभावादो। मिच्छत्तासंजम--कसाय--जोगा**

---

अवस्थामें अमूर्त होना सम्भव नहीं है।

शंका-- अनादिबन्धका परिज्ञान किस प्रमाणसे होता है ?

समाधान-- चूंकि जीव और शरीरका वर्तमान बन्ध अनादिबन्धके विना बन नहीं सकता है, अत एव इस अन्यथानुपपत्तिरूप हेतुसे उसका ज्ञान हो जाता है।

शंका-- वर्तमान बन्धको घटित करानेके लिये पुद्गलके समान जीवको भी रूपी कहना योग्य नहीं है, क्योंकि, वैसा स्वीकार करनेपर जीव और शरीर दोनों चूंकि महान् परिमाणवाले हैं और रूपी भी हैं; अतएव वे इन्द्रियग्राह्य हो जाते हैं। इसलिए उनके रूप, रस, गन्ध और स्पर्शके अलग अलग ग्रहण होनेका प्रसंग आता है। दूसरे, जीव द्रव्यको इस प्रकारसे रूपी स्वीकार करनेपर उसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं है, क्योंकि, 'जो रूपी हैं वे पुद्गल हैं' इस सूत्रोक्त लक्षणके अनुसार रूपी माननेसे जीवोंका पुद्गलोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। तीसरे, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके असाधारण गुणरूपसे परिणत भी नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसी प्रवृत्ति अत्यन्ताभावके द्वारा रोकी जाती है। द्रव्योंके असाधारण लक्षण कौनसे हैं ? जीव द्रव्यका असाधारण लक्षण चेतना; पुद्गल द्रव्यका रूप, रस, गन्ध व स्पर्श; आकाश द्रव्यका अवगाहन, धर्म द्रव्यका जीवों और पुद्गलोंके गमनागमनमें निमित्तकारणता, अधर्म द्रव्यका उक्त जीवों और पुद्गलोंके अवस्थानमें निमित्तकारणता, तथा काल द्रव्यका असाधारण लक्षण द्रव्योंके परिणमनमें निमित्तकारण होता है। द्रव्य किसे कहते हैं ? अपने असाधारण स्वरूपको न छोडकर दूसरे द्रव्योंके असाधारण स्वरूपका परिहार करते हुए जो उन उन पर्यायोंकों वर्तमानमें प्राप्त होता है, भविष्यमें प्राप्त होगा व भूतकालमें प्राप्त हो चुका है वह द्रव्य कहलाता है। इसलिये जीव अमूर्तिक ही है, क्योंकि, पुद्गल द्रव्यके जो रूप और रसादिक असाधारण गुण हैं उनके स्वरूपसे उसका परिणमन हो नहीं सकता। तथा मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और

---

✪ काप्रतौ 'वि' इत्येतत् पदं नोपलभ्यते। ❋ तत्वा० ५-५.

✿ यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि। स. सि ५-२.

**जीवादो✿ अपुधभूदा कम्मइयवग्गणक्खंधाणं तत्तो पुधभूदाणं कधं परिणामांतरं संपादेंति ? णं एस दोसो, जलणट्ठिददहणगुणेण तेल्लस्स वट्टिगयस्स ⊙ कज्जलागारेण परिणामुवलंभादो । वुत्तं च--**

राग-द्वेषाद्यूष्मा स योग✱-वर्त्यात्मदीप आवर्ते✿ ।
स्कन्धानादाय पुनः परिणमयति तांश्च कर्मतया ।। १८ ।।

**जदि मिच्छत्तादिपच्चएहि कम्मइयवग्गणक्खंधा अट्ठकम्मागारेण परिणमंति तो एगसमएण सव्वकम्मइयवग्गणक्खंधा कम्मागारेण किं ण परिणमंति, णियमाभावादो? ण, दव्व-खेत्त-काल-भावे त्ति चदुहि णियमेहि णियमिदाणं परिणामुवलंभादो । दव्वेण अभवसिद्धिएहि अणंतगुणाओ सिद्धाणमणंतभागमेत्ताओ चेव वग्गणाओ एगसमएण एगजीवादो कम्मसरूवेण परिणमंति । खेत्तेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तोगाहणाओ जीवेणोगाढखेत्तट्ठियाओ चेव परिणमंति, ण सेसाओ । कालेण एगसमयमादिं कादूण जाव असंखेज्जलोगमेत्तकाल कम्मइयवग्गणसरूवेण ट्ठिदाओ चेव परिणमंति, ण सेसाओ।**

---

योग ये जीवसे अभिन्न होकर उससे पृथग्भूत कार्मण वर्गणाके स्कन्धोंके परिणामान्तर ( रूपित्व ) को कैसे उत्पन्न करा सकते हैं ?

समाधान-- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अग्निमें स्थित दहन गुणके निमित्तसे बत्तीमें रहनेवाले तेलका कज्जलके आकारसे परिणाम पाया जाता है । कहा भी है--

संसारमें राग-द्वेषरूपी उष्णतासे संयुक्त वह आत्मारूपी दीपक योगरूप बत्तीके द्वारा ( कार्मण वर्गणाके ) स्कन्धोंको ग्रहण करके फिर उन्हें कर्मस्वरूपसे परिणमाता है ।। १८ ।।

शंका-- यदि मिथ्यात्वादिक प्रत्ययोंके द्वारा कार्मण वर्गणाके स्कन्ध आठ कर्मरूपसे परिणमन करते हैं तो समस्त कार्मण वर्गणाके स्कन्ध एक समयमें आठ कर्मरूपसे क्यों नहीं परिणत हो जाते, क्योंकि, उनके परिणमनका कोई नियामक नहीं है ?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार नियामकों द्वारा नियमको प्राप्त हुए उक्त स्कन्धोंका कर्मरूपसे परिणमन पाया जाता है । यथा--द्रव्यकी अपेक्षा अभवसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणी और सिद्ध जीवोंके अनन्तवें भाग मात्र ही वर्गणायें एक समयमें एक जीवके साथ कर्मस्वरूपसे परिणत होती हैं । क्षेत्रकी अपेक्षा जीवके द्वारा अवगाहको प्राप्त क्षेत्रमें स्थित अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनावाली वर्गणायें ही कर्मस्वरूपसे परिणत होती हैं, शेष वर्गणायें कर्मस्वरूपसे परिणत नहीं होतीं । कालकी अपेक्षा एक समयसे लेकर असंख्यात लोक मात्र कालके भीतरकी कार्मणवर्गणा स्वरूपसे स्थित ही व वर्गणायें कर्म-स्वरूपसे परिणत होती हैं, शेष नहीं होती । भावकी अपेक्षा कार्मणवर्गणा पर्यायरूपसे परिणत

---

✿ माप्रतौ 'जोगजीवादो' इति पाठः । ⊙ ताप्रतौ 'वड्ढिगयस्स इति पाठः । ✱ ताप्रतौ 'सयोग- इति पाठः । ✿ मप्रतौ ' आदत्ते ' इति पाठः ।

**भावेण कम्मइयवग्गणपज्जाएण परिणदाओ चेव कम्मसरूवेण परिणमंति, ण सेसाओ✿। वुत्तं च--**

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेऊ❀ सादियमहणादियं वा वि✿॥ १९॥

**सो च एवंविहलक्खणो पक्कमो पयडिपक्कमो ठिदिपक्कमो अणुभागपक्कमो चेदि तिविहो। तत्थ पयडिपक्कमो दुविहो-- मूलपयडिपक्कमो उत्तरपयडिपक्कमो चेदि। तत्थ मूलपयडिपक्कमं वत्तइस्सामो। तं जहा- सव्वत्थोवं एगसमयपबद्धम्हि आउअदव्वं, णामा-गोददव्वं अण्णोण्णं सरिसं होदूण विसेसाहियं, णाण-दंसणावरण-अंतराइयाणं दव्वमण्णोण्णेण सरिसं होदूण विसेसाहियं। मोहणीयदव्वं विसेसाहियं। वेयणीयदव्वं विसेसाहियं। सव्वत्थ विसेसपमाणमणंतरहेट्ठिमदव्वमावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडेदूण तत्थ एगखंडमेत्तं होदि। वुत्तं च--**

आउअभागो थोवो णामा-गोदे समो तदो अहिओ।
आवरण-अंतराए तुल्लो अहिओ दु मोहे वि॥ २०॥

---

ही वे कर्मस्वरूपसे परिणत होती हैं, शेष नहीं। कहा भी है--

जीव एकक्षेत्रमें अवगाहको प्राप्त हुए तथा कर्मके योग्य सादि, अनादि अथवा उभय स्वरूप पुद्गलप्रदेशसमूहको यथोक्त हेतुओं ( मिथ्यात्व आदि ) द्वारा अपने सब प्रदेशोंसे बांधता है॥ १९॥

इस प्रकारके लक्षणसे संयुक्त वह प्रक्रम प्रकृतिप्रक्रम, स्थितिप्रक्रम और अनुभागप्रक्रमके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें प्रकृतिप्रक्रम मूलप्रकृतिप्रक्रम और उत्तरप्रकृतिप्रक्रमके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें मूलप्रकृतिप्रक्रमका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है- एक समयप्रबद्धमें आयुका द्रव्य सबसे स्तोक है। नाम व गोत्र कर्मोंका द्रव्य परस्परमें समान होकर उससे विशेष अधिक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन कर्मोंका द्रव्य परस्परमें समान होकर नाम व गोत्रकी अपेक्षा विशेष अधिक है। मोहनीयका द्रव्य उससे विशेष अधिक है। वेदनीयका द्रव्य उससे विशेष अधिक है। सब जगह विशेषका प्रमाण अनन्तर अधस्तन द्रव्यको आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करके जो एक खण्ड प्राप्त होता है उतने मात्र है। कहा भी है--

आयु कर्मका भाग सबसे स्तोक है। नाम व गोत्र कर्ममें वह समान हो करके उससे अधिक है। आवरण अर्थात् ज्ञानावरण व दर्शनावरण तथा अन्तरायमें वह समान होकर उक्त दोनों कर्मोंकी अपेक्षा विशेष अधिक है। मोहनीयमें उनसे विशेष अधिक है। किन्तु वेदनीय

---

✿ ते खलु पुद्गलस्कन्धा अभव्यानन्तगुणा सिद्धानन्तभागप्रमितप्रदेशा घनांगुलस्यासंख्येयभागक्षेत्रावगाहिन एक-द्वि-त्रि-चतु:-संख्येयासंख्येयसमयस्थितिका: पचवर्ण-पंचरस-द्विगन्ध-चतु:स्पर्शस्वभावा अष्टविधकर्मप्रकृति-योग्या: योगवशादात्मनात्मसात् क्रियन्त इति प्रदेशबन्ध: समासतो वेदितव्य:। स. सि. ८-२४.

❀ ताप्रतौ 'जहुत्तहेयो सादियमणादियं' इति पाठ:। ✿ एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं। बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं॥ गो. क. १८५.

सव्वुवरि वेदणीए भागो अहिओ दु कारणं किंतु ।
सुह-दुक्खकारणत्ता ठिदियविसेसेण सेसाणं ✽ ।। २ ।।

**एवं सत्तविह-छव्विहबंधगेसु वि पदेसपक्कमो परूवेयव्वो, विसेसाभावादो । एवं मूलपयडिपक्कमो समत्तो ।**

**उत्तरपयडिपक्कमो दुविहो– उक्कस्सउत्तरपयडिपक्कमो जहण्णउत्तरपयडिपक्कमो चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं– सव्वथोवं अपच्चक्खाणकसायमाणपदेसग्गं । अपच्चक्खाणकोधे विसेसाहियं । अपच्चक्खाणमायाए विसेसाहियं । अपच्चक्खाणलोहपदेसग्गं विसेसाहियं । पच्चक्खाणमाणपदेसग्गं विसेसाहियं । कोहे विसेसाहियं । मायाए विसेसाहियं । लोभे विसेसाहियं । अणंताणुबंधिमाणपदेसग्गं विसेसाहियं । कोधे विसेसाहियं । मायाए विसेसाहियं । लोभे विसेसाहियं । मिच्छत्ते विसेसाहियं । केवलदंसणावरणे विसेसाहियं । पयलाए विसेसाहियं । णिद्दाए विसेसाहियं । पयलापयलाए पक्कमदव्वं विसेसाहियं । णिद्दाणिद्दाए विसेसाहियं । थीणगिद्धीए विसेसाहियं । केवलणाणावरणे विसेसाहियं । आहारसरीरणामाए पक्कमदव्वं अणंतगुणं । वेउव्वियसरीरणामाए पक्कमदव्वं विसेसाहियं ।**

---

कर्मका द्रव्य सर्वोत्कृष्ट हो करके मोहनीयकी अपेक्षा विशेष अधिक है । इसका कारण वेदनीयका सुख व दुखमें निमित्त होना है । शेष कर्मोंका हीनाधिक भाग उनकी स्थितिविशेषसे है ।।२०-२१।।

इसी प्रकारसे सात सात प्रकारके व छह प्रकारके कर्मोंको बांधनेवाले जीवोंमें भी प्रदेशप्रक्रमका कथन करना चाहिये, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार मूलप्रकृतिप्रक्रम समाप्त हुआ ।

उत्तरप्रकृतिप्रक्रम दो प्रकारका है– उत्कृष्ट उत्तरप्रकृतिप्रक्रम और जघन्य उत्तरप्रकृतिप्रक्रम । उनमें उत्कृष्ट उत्तरप्रकृतिप्रक्रम प्रकृत है– अप्रत्याख्यान कषायोंमें मानका प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है । अप्रत्याख्यान क्रोधमें उससे अधिक प्रदेशाग्र है । अप्रत्याख्यान मायामें उससे अधिक प्रदेशाग्र है । अप्रत्याख्यान लोभमें उससे अधिक प्रदेशाग्र है । उससे प्रत्याख्यान मानका प्रदेशाग्र विशेष अधिक है । क्रोधमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र है । मायामें विशेष अधिक प्रदेशाग्र है । लोभमें विशेष अधिक प्रदेशाग्र है । अनन्तानुबन्धी मानका प्रदेशाग्र उससे विशेष अधिक है । क्रोधमें विशेध अधिक है । मायामें विशेष अधिक है । लोभमें विशेष अधिक है । मिथ्यात्वमें विशेष अधिक है । केवलदर्शनावरणमें विशेष अधिक है । प्रचलामें विशेष अधिक है । निद्रामें विशेष अधिक है । वह प्रक्रमद्रव्य प्रचलाप्रचलामें विशेष अधिक है । निद्रानिद्रामें विशेष अधिक है । स्त्यानगृद्धिमें विशेष अधिक है । केवलज्ञानावरणमें विशेष अधिक है । प्रक्रमद्रव्य आहारशरीर नामकर्ममें अनन्तगुणा है । प्रक्रमद्रव्व वैक्रियिकशरीर नामकर्ममें विशेष अधिक है । प्रक्रमद्रव्य औदारिकशरीर नामकर्ममें विशेष अधिक है । प्रक्रमद्रव्य तैजसशरीर नामकर्ममें

---

✽ आउगभागो थोवो णामा-गो देसगो तदो अहियो घादितिये वि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिये ।। सुह दुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगो त्ति वेदणीयस्स सव्वेहिंतो बहुगं दव्व होदि त्ति णिद्दिट्ठं ।। सेसाण पयडीणं ठिदिपडिभागेण होदि दव्वं तु । आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ।। गो. क. १९२-१९४.

**ओरालियसरीरणामाए पक्कमदव्वं विसेसाहियं । तेजासरीरणामाए पक्कमदव्वं विसेसाहियं । कम्मइयसरीरणामाए पक्कमदव्वं विसेसाहियं । देवगइ-णिरयगईण पक्कमदव्वं संखेज्जगुणं । मणुसगईए विसेसाहियं । तिरिक्खगईए विसेसाहियं । अजस-गित्तीए विसेसाहियं । दुगुंछाए पक्कमदव्वं संखेज्जगुणं । भयपक्कमदव्वं विसेसाहियं । हस्स-सोगपक्कमदव्वं विसेसाहियं । रदि-अरदिपक्कमदव्वं विसेसाहियं । इत्थि-णवुं-सयवेदपक्कमदव्वं विसेसाहियं । दाणंतराए संखेज्जगुणं । लाभंतराए विसेसाहियं । भोगंतराए विसेसाहियं । परिभोगंतराए विसेसाहियं । विरियंतराए विसेसाहियं । कोहसंजलणे विसेसाहियं । मणपज्जवणाणावरणे विसेसाहियं । ओहिणाणावरणे विसेसाहियं । सुदणाणावरणे विसेसाहियं । मदिणाणावरणे विसेसाहियं । माणसंजलणे विसेसाहियं । ओहिदंसणावरणे विसेसाहियं । अचक्खुदंसणावरणे विसेसाहियं । चक्खुदंसणावरणे विसेसाहियं । पुरिसवेदे विसेसाहियं । मायासंजलणे✠ विसेसाहियं । अण्णदरम्हि आउए विसेसाहियं । णीचागोदे विसेसाहियं । लोहसंजलणे विसेसाहियं । असादे विसेसाहियं । उच्चागोदे जसगित्तीए विसेसाहियं । सादे विसेसाहियं । एवमुक्कस्सपयडिपक्कमो समत्तो ।**

**जहण्णए पयदं–सव्वत्थोवमपच्चक्खाणमाणे पक्कमदव्वं । कोहे विसेसाहियं । मायाए विसेसाहियं । लोभे विसेसाहियं । पच्चक्खाणमाणे विसेसाहियं । कोधे विसेसाहियं । मायाए**

---

विशेष अधिक है । प्रक्रमद्रव्य कार्मणशरीर नामकर्ममें विशेष अधिक है । देवगति और नरकगतिका प्रक्रमद्रव्य संख्यातगुणा है । मनुष्यगतिमें विशेष अधिक है । तिर्यग्गतिमें विशेष अधिक है । अयशकीर्तिमें विशेष अधिक है । जुगुप्सामें प्रक्रमद्रव्य संख्यातगुणा है । भयमें प्रक्रमद्रव्य विशेष अधिक है । हास्य व शोकमें प्रक्रमद्रव्य विशेष अधिक है । रति व अरतिमें विशेष अधिक है । स्त्रीवेद व नपुंसकवेदमें विशेष अधिक है । दानान्तरायमें संख्यातगुणा है । लाभान्तरायमें विशेष अधिक है । भोगान्तरायमें विशेष अधिक है । परिभोगान्तरायमें विशेष अधिक है । वीर्यान्तरायमें विशेष अधिक है । संज्वलन क्रोधमें विशेष अधिक है । मनःपर्यय-ज्ञानावरणमें विशेष अधिक है । अवधिज्ञानावरणमें विशेष अधिक है । श्रुतज्ञानावरणमें विशेष अधिक है । मतिज्ञानावरणमें विशेष अधिक है । संज्वलन मानमें विशेष अधिक है । अवधि-दर्शनावरणमें विशेष अधिक है । अचक्षुदर्शनावरणमें विशेष अधिक है । चक्षुदर्शनावरणमें विशेष अधिक है । पुरुषवेदमें विशेष अधिक है । संज्वलन मायामें विशेष अधिक हैं । अन्यतर आयुमें विशेष अधिक है । नीच गोत्रमें विशेष अधिक है । संज्वलन लोभमें विशेष अधिक है । असातावेदनीयमें विशेष अधिक है । उच्चगोत्र और यशःकीर्तिमें विशेष अधिक है । साता-वेदनीयमें विशेष अधिक है । इस प्रकार उत्कृष्ट प्रकृतिप्रक्रम समाप्त हुआ ।

जघन्य प्रकृतिप्रक्रम प्रकृत है – प्रक्रमद्रव्य अप्रत्याख्यान मानमेंसबसे स्तोक है । क्रोधमें विशेष अधिक है । मायामें विशेष अधिक है । लोभमें विशेष अधिक है । प्रत्याख्यान मानमें विशेष अधिक है । क्रोधमें विशेष अधिक है । मायामें विशेष अधिक है । लोभमें विशेष

---

✠ प्रत्योरुभयोरेव ' माणसंजलणे ' इति पाठः ।

**विसेसाहियं। लोभे विसेसाहियं। अणंताणुबंधिमाणे विसेसाहियं। कोधे विसेसाहियं। मायाए विसेसाहियं। लोभे विसेसाहियं। मिच्छत्ते विसेसाहियं। केवलदंसणावरणे विसेसाहियं। पयलाए विसेसाहियं। णिद्दाए विसेसाहियं। पयलापयलाए विसेसाहियं। णिद्दाणिद्दाए विसेसाहियं। थीणगिद्धीए विसेसाहियं। केवलणाणावरणे विसेसाहियं। ओरालियसरीरे अणंतगुणं। तेजइयसरीरे विसेसाहियं। कम्मइयसरीरे विसेसाहियं। तिरिक्खगईए संखेज्जगुणं। जसाजसगित्तीए सरिसं विसेसाहियं। मणुसगईए विसेसाहियं। दुगुंच्छाए संखेज्जगुणं। भये विसेसाहियं। हस्स-सोगे विसेसाहियं। रदि-अरदीए विसेसाहियं। अण्णदरम्हि वेदे विसेसाहियं। माणसंजलणाए✿ विसेसाहियं। कोधे विसेसाहियं। मायाए विसेसाहियं। लोभे विसेसाहियं। दाणंतराइए विसेसाहियं। लाहंतराइए विसेसाहियं❀। भोगंतराइए विसेसाहियं। परिभोगंतराइए विसेसाहियं। वीरियंतराइए विसेसाहियं। मणपज्जवणाणावरणे विसेसाहियं। ओहिणाणावरणे विसेसाहियं। सुदणाणावरणे विसेसाहियं। मदिणाणावरणे विसेसाहियं। ओहिदंसणावरणे विसेसाहियं। अचक्खुदंसणावरणे विसेसाहियं। चक्खुदंसणावरणे विसेसाहियं। उच्च-णीचागोदेसु संखेज्जगुणं। सादासादेसु विसेसाहियं। वेउव्वियसरीरे असंखेज्जगुणं। देवगईए संखेज्जगुणं।**

---

अधिक है। अनन्तानुबन्धी मानमें विशेष अधिक है। क्रोधमें विशेष अधिक है। मायामें विशेष अधिक है। लोभमें विशेष अधिक है। मिथ्यात्वमें विशेष अधिक है। केवलदर्शनावरणमें विशेष अधिक है। प्रचलामें विशेष अधिक है। निद्रामें विशेष अधिक है। प्रचलाप्रचलामें विशेष अधिक है। निद्रानिद्रामें विशेष अधिक है। स्त्यानगृद्धिमें विशेष अधिक है। केवलज्ञानावरणमें विशेष अधिक है। औदारिकशरीरमें अनन्तगुणा है। तैजसशरीरमें विशेष अधिक है। कार्मणशरीरमें विशेष अधिक है। तिर्यंचगतिमें संख्यातगुणा है। यशकीर्ति व अयशकीर्तिमें समान होकर विशेष अधिक है। मनुष्य-गतिमें विशेष अधिक है। जुगुप्सामें संख्यातगुणा है। भयमें विशेष अधिक है। हास्य व शोकमें विशेष अधिक हैं। रति व अरतिमें विशेष अधिक है। अन्यतर वेदमें विशेष अधिक है। संज्वलन मानमें विशेष अधिक है। क्रोधमें विशेष अधिक है। मायामें विशेष अधिक है। लोभमें विशेष अधिक है। दानान्तरायमें विशेष अधिक है। लाभान्तरायमें विशेष अधिक है। भोगान्तरायमें विशेष अधिक है। परिभोगान्तरायमें विशेष अधिक है। वीर्यान्त-रायमें विशेष अधिक है। मनःपर्ययज्ञानावरणमें विशेष अधिक है। अवधिज्ञानावरणमें विशेष अधिक है। श्रुतज्ञानावरणमें विशेष अधिक है। मतिज्ञानावरणमें विशेष अधिक है। अवधिदर्शनावरणमें विशेष अधिक है। अचक्षुदर्शनावरणमें विशेष अधिक हैं। चक्षुदर्शना-वरणमें विशेष अधिक है। ऊंच व नीच गोत्रमें संख्यातगुणा है। साता व असाता वेदनीयमें विशेष अधिक है। वैक्रियिकशरीरमें असंख्यातगुणा है। देवगतिमें संख्यातगुणा है। मनुष्य व तिर्यंच आयुका प्रक्रमद्रव्य असंख्यातगुणा है। नरकगतिका असंख्यातगुणा है। देव व नारक

---

✿ ताप्रतौ 'अण्णदरम्हि विसे० वेदे माणसंजलणाए' इति पाठः।

❀ ताप्रतौ 'लाहंतराइए विसेसाहियं' इत्येतद् वाक्यं नास्ति।

**मणुस-तिरिक्खाउआणं असंखेज्जगुणं। णिरयगईए असंखेज्जगुणं। देव-णिरयाउआणं असंखेज्जगुणं। आहारसरीरस्स पक्कमदव्वमसंखेज्जगुणं। एवं पयडिपक्कमो समत्तो।**

**ठिदिपक्कमे पयदं– सव्वत्थोवं चरिमाए ट्ठिदीए पक्कमिदपदेसग्गं। पढमट्ठिदीए पक्कमिदपदेसग्गमसंखेज्जगुणं। अपढम-अचिरमासु ट्ठिदीसु पक्कमिदपदेसग्गमसंखेज्जगुणं। अपढमाए पदेसग्गं विसेसाहियं। अचरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गं विसेसाहियं। सव्वासु ट्ठिदीसु पदेसग्गं विसेसाहियं। कुदो एदमप्पाबहुगं? ठिदीसु पक्कमिददव्वावेक्खित्तादो। तं जहा– जहण्णियाए ट्ठिदीए बहुअं पदेसग्गं पक्कमदि। बिदियाए विसेसहीणं। एवं विसेसहीणं होदूण गच्छदि जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, तत्थ दुगुणहीणं*। एवं णेयव्वं जाव उक्कस्सट्ठिदि त्ति। एत्थ एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो। णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं। एवं ठिदिपक्कमो समत्तो।**

**अणुभागपक्कमे पयदं जहण्णियाए वग्गणाए बहुअं पदेसग्गं पक्कमदि। बिदियाए विसेसहीणमणंतभाएण। एवमणंताणि फद्दयाणि गंतूण दुगुणहीणं पक्कमदि।**

---

आयुका असंख्यातगुणा है। आहारशरीरका प्रक्रमद्रव्य असंख्यातगुणा है। इस प्रकार प्रकृतिप्रक्रम समाप्त हुआ।

स्थितिप्रक्रम प्रकृत है– चरम स्थितिमें प्रक्रमित प्रदेशाग्र सबसे स्तोक है। प्रथम स्थितिमें प्रक्रमित प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। अप्रथम-अचरम स्थितियोंमें प्रक्रमित प्रदेशाग्र असंख्यातगुणा है। अप्रथम स्थितिमें प्रक्रमित प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। अचरम स्थितिमें प्रक्रमित प्रदेशाग्र विशेष अधिक है। सब स्थितियोंमें प्रक्रमित प्रदेशाग्र विशेष अधिक है।

यह अल्पबहुत्व क्यों हैं ?

समाधान– कारण कि वह स्थितियोंमें प्रक्रमको प्राप्त हुए द्रव्यकी अपेक्षा करता है। यथा– जघन्य स्थितिमें बहुत प्रदेशाग्र प्रक्रान्त होता है। द्वितीय स्थितिमें विशेषहीन प्रदेशाग्र प्रक्रान्त होता है। इस प्रकार विशेषहीन होकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक जाता है। वहांकी स्थितिमें दुगुणा हीन प्रदेशाग्र प्रक्रान्त होता है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक ले जाना चाहिये।

यहां एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके वर्गमूलके असंख्यातवें भाग मात्र हैं। नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर उनसे असंख्यातगुणा है। इस प्रकार स्थितिप्रक्रम समाप्त हुआ।

अनुभागप्रक्रम प्रकृत है– जघन्य वर्गणामें बहुत प्रदेशाग्र प्रक्रान्त होता है। द्वितीय वर्गणामें अनन्तवें भाग रूप विशेष हीन प्रदेशाग्र प्रक्रान्त होता है। इस प्रकार अनन्त स्पर्द्धक जाकर दुगुणा हीन प्रदेशाग्र प्रक्रान्त होता है। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा तक ले जाना चाहिये।

---

* ताप्रतौ 'दुगुहीणं' इति पाठः।

**एवं णेयव्वं जाव उक्कस्सवग्गणे त्ति । एयगुणहाणिट्ठाणंतरे फद्दयाणि थोवाणि । णाणागुणहाणिट्ठाणंतराणि अणंतगुणाणि ।**

**एत्थ अप्पाबहुअं वुच्चदे । तं जहा– सव्वत्थोवमुक्कस्सियाए वग्गणाए पक्कमिददव्वं । जहण्णियाए वग्गणाए अणंतगुणं । अजहण्ण-अणुक्कस्सियासु वग्गणासु पक्कमिददव्वमणंतगुणं । अजहण्णियासु विसेसाहियं । अणुक्कस्सियासु विसेसाहियं । सव्वासु विसेसाहियं । संपहि ट्ठिदीसु पक्कमिदअणुभागस्स अप्पाबहुअं उच्चदे– सव्वत्थोवो जहण्णियाए ट्ठिदीए पक्कमिदअणुभागो । अपढम-अचरिमासु ट्ठिदीसु अणुभागो अणंतगुणो । अचरिमासु ट्ठिदीसु अणुभागो विसेसाहिओ । चरिमाए ट्ठिदीए अणुभागो अणंतगुणो । अपढमासु ट्ठिदीसु अणुभागो विसेसाहिओ । सव्वासु ट्ठिदीसु अणुभागो विसेसाहिओ । एसो णिक्खेवाइरियउवएसो ।**

**एवं पक्कमे त्ति समत्तणुओगद्दारं ।**

---

एकगुणहानिस्थानान्तरमें स्पर्द्धक स्तोक हैं । नानागुणहानिस्थानान्तर ( में स्पर्धक ) अनन्तगुणे हैं ।

यहां अल्पबहुत्वका कथन करते हैं । वह इस प्रकार है— उत्कृष्ट वर्गणामें प्रक्रमप्राप्त द्रव्य सबसे स्तोक है । जघन्य वर्गणामें अनन्तगुणा है । अजघन्य-अनुत्कृष्ट वर्गणाओंमें प्रक्रमप्राप्त द्रव्य अनन्तगुणा है । अजघन्य वर्गणाओंमें विशेष अधिक है । अनुत्कृष्ट वर्गणाओंमें विशेष अधिक है । सब वर्गणाओंमें विशेष अधिक है ।

अब स्थितियोंमें प्रक्रमप्राप्त अनुभागके अल्पबहुत्वका कथन करते हैं— जघन्य स्थितिमें प्रक्रमप्राप्त अनुभाग सबसे स्तोक है । अप्रथम-अचरम स्थितियोंमें प्रक्रमप्राप्त अनुभाग अनन्तगुणा है । अचरम स्थितियोंमें अनुभाग विशेष अधिक है । चरम स्थितिमें अनुभाग अनन्तगुणा है । अप्रथम स्थितियोंमें अनुभाग विशेष अधिक है । सब स्थितियोंमें अनुभाग विशेष अधिक है । यह निक्षेपाचार्यका उपदेश है ।

इस प्रकार प्रक्रम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।